सौ
व
र्ण

सुमित्रानंदन पंत



भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपाठ लाकादय म थमाला   हि दा म थाङ्क-६६
म थमाला मम्पा क नियामक
ल्भ्माचन्द्र नन

SAUVATNA
[Po m]
SUMITI ANANDAN PANT
Bh at y (y [tl l bl t n
S con l Edition 1963
Pr R 3

प्रकाशक
मारताय भानपाठ काशा

मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय वाराणसी
द्वितीय संस्करण १९६३
मू य मात्र तीन रुपये

विज्ञापन

'सौवर्ण' के अंतर्गत मेरे दो काव्य रूपक संगृहीत हैं, जो अपने संक्षिप्त रूपमें आकाशवाणीसे प्रसारित हो चुके हैं। 'सौवर्ण' का रचनाकाल मार्च १९५४ है और 'स्वप्न और सत्य' का नवम्बर १९५२।

१८/७ बी०, कस्तूरबा रोड
इलाहाबाद

—सुमित्रानंदन पंत

द्वितीय संस्करण

इस संस्करणमें 'दिग्विजय' नामक नवीन काव्य रूपक भी जोड़ दिया गया है, जिसकी प्रेरणा मुझे रूस द्वारा गगारिन की अन्तरिक्ष यात्रा से मिली।

१ फरवरी ६२

—सुमित्रानंदन पंत

बधुवर
श्री रामचद्र टण्डनको
सप्रेम

सौवर्ण

[संक्रान्तिकालीन मानव मूल्योंके विकासका प्रतीक रूपक]

स्वदूत

स्वदूती

देव

देवी

कवि

सौवर्ण

अन्य स्त्री पुरुष स्वर

[युगान्तर सूचक वाद्य गगात]

[डमरु ध्वनि के साथ नाट्य म उन्पात]

पृष्ठभूमि में शोभित मौन हिमाद्रि श्रणिया
निज सान्स्कृतिक सत्य सी स्थित शुभ सनातन,—
दिग दिगन्त् यह दृश्य याग्य अमरों क निश्चय ।

परिक्रमा कर रहे देवगण धरा शिखर की
अर्ध स्वगान्त जगमग छायातप में भूषित
श्लक्ष्ण मधुर कंठों म गाते स्निग्ध वदना
नव युगान्तर का मन में मरत पा रहस ।

शख घट ताशा मृदग मधर बजाते,
किन्नरियों क सँग किन्नर करते नागतन
प्राम गूँजें मगल स्वर अम्बर पथ में गुंजित
भरण क फिर स्वर्ग के का नापन सभाषण ।

[नाग पंच धारा भस्म आदि का उन्मित पाद]

[देवताओं द्वारा स्तवन]

जय हिमाद्रि जय हे !

जयति, स्वर्ग भाल अमर,
जयति विश्व हृदय शिखर,
जयति, सत्य शिव सुंदर,
शाश्वत अक्षय हे !

पुण्य सेतु, देव निलय,
संस्कृति के शुचि संचय,
नदी सोपान अभय,
शुभ्र शांतिमय हे !

धर्म चेतना निखार,
जन मन के ज्योति ज्वार
संयम तप मुक्ति द्वार
चिर मंगलमय हे !

स्मित हास नम विकास
उर में रमते विलास
क्रांति सृजन प्रलय लास
सुख दुख अभिनय, हे !

पावन सुर वारि निर्झर
उर में स्वर्णिम रंग भर
भू रज रसते उर्वर,
जड़ चित् परिणय हे !

कराल, भास्वर, अमेय,
ध्यानावस्थित अजेय,
जीवन के चरम ध्येय
चिन्मय, तन्मय हे !

हरित अवनि भरित अंक,
रहस कलामय मयंक,
काल व्याल से निशंक
मृत्युंजय, जय हे !

उदित कौन परम लक्ष्य
मनश्चक्षु के समक्ष ?
ऊर्ध्व प्राण मौन वक्ष,
सुर नर विस्मय हे !

देव

निभृत याम यह मध्य निशा का, गुह्य तमसमय,
गहन अचेतन मन सा रहस मौन से मुखरित,—
मृत निशा हो देव जागरण की वेला भी !
अतल मूक भय नीचे, ऊपर नीरव विस्मय,
महा प्रकृति विश्राम कर रही स्वप्न-कक्ष में,—
रज सत तम हो लीन आत्म विस्मृति के पट में !
कैसा निविड़ तिमिर छाया यह, महा दिशा के
कृष्णाजिन सा महाकाल के वक्षस्थल पर
गाढ़ लालिमाओं के आवर्तों में लहरा,—
सृजन हर्ष के प्रीति पाश में बँधे हुए दो !
दिव्य नभस यह दिव्य विभा में होगा वितरित
स्थापित कर भय विस्मय को आशा प्रतीति से !

देवी

शरत्पूर्ण चन्द्रमा के शशि का सौम्य पावन मुग्ध
मौन मधुरिमा, आभिजात्य गरिमा में मण्डित,
नीरव सम्मोहन बरसाता अंतरिक्ष में
अंधकार के निखिल जगत का रुद्ध बिंदु बन,—
अंतर्मन के मौन मुकुर सा स्थिर तेजोमय !
हिम शिखरों पर प्रतिफलित शत रजत रश्मियाँ
आज रंजित आभाओं में प्रतिध्वनित हो रहीं
शान्त प्रार्थनाओं सी, निःस्वर उमंगों सी,—
नीरव रचना हो कान्ति तड़ित् रूपान्तर में !
स्वर्ण स्फटिक जल रचना जगमग रत्न आविधियाँ
स्निग्धा पर्णियों के पुष्पों सी शत वर्णों में,
इन्द्रधनुष्यों में बद्ध कर स्वप्न द्रुत नव
विस्मित करते अन्तश्चेतन मनोभूमि में,—
अद्भुत रचनाएँ उपजाती स्वप्न सृजन की !

देव

पतझर मधु का संधिकाल यह झर झर पड़ते
पीले पत्रों के मर्मर क्षण, उर कंदर में,
प्राण वायु का मलय स्पर्श पा, गत स्मृतियों के
जीर्ण भार से हृदय मुक्त कर, मृदु धरा के
उपवन में गोपन अस्फुट पद चापों से
मौन प्रतीक्षा, आशा का संगीत वहन कर!—
निर्जन वन में गूँज उठी लय सृजन व्यथा की!
रजत कुहासे में लिपटी कलियों की स्वर्णिम
अर्ध खुली पलकें हँस उठतीं स्वप्न जगत में,
नाम हीन सौरभ में डूब गया दिगंत मन!
अंतश्चेतन सूक्ष्म भुवन हो रहे पल्लवित,
निकट संक्रमण-वेला भू मानस विकास की!

देवी

अधिमानस का शुभ्र सत्य जाज्वल्य, स्वप्न स्मित,
यशःकाय चैतन्य का अजर अंतर्मन का
सार तत्व मानव संस्कृति का अमर दाय धन!
निभृत शिखरों पर ऊर्ध्वाकाशों से झर झर
शत शत रत्न छटाएँ छहराता प्रकाश की,
जन्म अभी ले सका नहीं जो मनोगुहा में!
नर के अंतर्जीवन का इतिहास अलौकिक
पुंजीभूत हुआ इसमें, युग युग से विकसित—
सूक्ष्म जगत के सोपानों में उठ सत्पुरुष!

देन

आज वन्य चेतना शक्तियाँ जन्म ग्रहण कर
शांति प्रीति सुषमा की स्वर्णिम निर्झरिणी सी

नव स्वर लय गति से निःस्वर नूपुर स्पंदन भर
रश्मि स्फुरित अंतर्नभ से अन्तर्गति हो रहा
ध्यान मग्न सम तपोभूमि के स्वर्ण व्योम में!—
चल श्रद्धा विश्वास, चेतना की सांसों में
रहा सत्य-परिणीत धारणा परमेश्वर में!

दशा

कोटि लक्ष युग बीत गये जब निष्फल श्रम में
ज्योति स्तंभ सा निःसंग था चैतन्य सार यह
शनैः शनैः उठ, ऊर्ध्व भाल पर धारण कर निज
रवि शशि तारा ज्वलित मुकुट स्मित आलोकन का।
मानवों समाज धनिकों के युग में बहु
विकसित होता रहा शुद्ध अंतस्थ स्तूप यह,
मन गुंजित स्वर्गी प्राणों की द्वारा में
जीवन वैभव रहा समता नव शोभा में।

दव

नया सांस्कृतिक वृत्त उदित हो रहा क्षितिज में
मानव जीवन मन का नव रूपांतर करने
नव संगति में सभी परिस्थितियों का भू की,
नवल संतुलन भर बहिरंतर के यथार्थ में।
नवसों की मणि स्तवकों छुए चैतन्य सुधा से,
स्वर्ग ध्वनित गाता कल्याणी भविष्य को,
नव दृष्टि अनिमेष कर जुगा मनुज के मन की
सक्रिय फिर से दिव्य चेतना, नव्य संचरण
गुहा गढ़ ज्योतिनिर्झर सी युग-संचय अब,
जन भू का संचित करने जीवन शोभा में।
देखो, वह स्वर्गंत उतरते स्वप्न प्रण स्मित,
आओ, हम विश्राम करें ध्यानावस्थित हो?

[देवों का अंतर्धान होना, स्वर्दूतों का प्रवेश]

स्वर्दूती

ओ नभचर, ओ खेचर, क्या स्वप्नों में जाग्रत
भाव पंख धर गये तुम्हारे? कहाँ छिपे हो?

स्वर्दूत

मैं हूँ तो, खेचरी, क्या कहूँ, इन अमरों का
नित नव वैभव देख, दृष्टि अपलक रह जाती!
बरस रही स्वप्नों की जगमग नीरव शोभा
स्वर्णिम पंखड़ियों में झर झर अंतर्नभ से,
चकित रह गये लोचन क्षण भर ज्योति मुग्ध हो!

[प्रसन्न वाद्य संगीत]

यह अमरों का पुण्य धाम, गोपन क्रीडा स्थल,
सूक्ष्म चेतना, सृजन शक्तियों के प्रतीक जो
आज अतींद्रिय मन स्वर्ग के वासी सुरगण
तपोभूमि में हिमवत् की समवेत हो रहे,
कल्पांतर का रहस समय सन्निकट जानकर,—
हम जिनके नव युग के प्रतिनिधि अग्रदूत हैं!

स्वर्दूती

रहने दो इन प्रतिक्रियावादी देवों को,
मूढ़ मनुज को स्वप्न पलायन सिखलाते जो!
आओ, हम भू भ्रमण करें स्मित छाया पथ से,
नव युग की नव परिणति देखें मनुज लोक में!

स्वर्दूत

क्या ये पौराणिक प्रयोग अब भी संभव हैं?

मानूता

सब कुछ सभव है प्रगल्भ कल्पना के लिए,
जो विद्युत् गति से आगे चल सकती है।
नये प्रयोगों का यह नागोर नग नग म
वायुयान से उड़ इस युग का मौतिक मानव
देवयान म विचरण करता अब, स्वर्ग के
मथित उर का विद्युत् पना म निर्माण कर।

| नगपति और महाकाव्य |

वह देखो, हिमत अधित्यका अतर्मानस की
ऋषियों के पावन आश्रम सी मौन ध्यान रत
नागाग के तरु लगे नीरव चिन्तन से,
लटके धुल कषाय साधना निरत चित्त म
लिपे पुते तृण प्रागण सुधर सात्विक मन म
यज्ञ धूम, मन्त्रोच्चारों से लगते धूमिल।
विचरण करते यहाँ मगों के छौने अब भी
निज अबाध विस्मित चितवन से देख जगत को
सागों से सहला मनियों के समाधिस्थ तन।
यहाँ आत्म द्रष्टा तापस रत चिन्तन में
पद्मासन स्थित, केन्द्रित दृग नासाग्र भाग में,
आरोहण कर रहे ऊर्ध्व श्रणियाँ सत्य की
प्राणों की सतरँग छायाएँ छाल कर निखिल,
तन्मय विश्व विरत, अखड ब्रह्माड सत्य को
जानेन्या अगृष्ट मात्र था, आप्त काम मन।

मेघदूत

धान-सा अगुष्ठ मात्र? यह विडबना है
मानव मन की विस्मय, जो अति भाव प्रवण हो,
घट का सागर में मज्जित करने के बदले
सागर को बाधना चाहता सीमित घट म।

अखिल व्याप्त सत्ता के सक्रिय अमर सत्य को
आत्म रूप में परिणत कर निष्क्रिय साक्षातन।
हाय असंभव को संभव करने का निष्फल
क्षण में वह इन्द्रजाल रचता जाता नव।

स्वदूती

यह देखो, यह भू जीवन की घाटी नूतन
अंधकार था जहाँ घोर, विद्युत् प्रकाश से
जगमग अब वह लगती नव नक्षत्र लोक सी।
यहाँ मनस्वी मानव अथक निरीक्षण पथ में
उद्घाटित कर मूक प्रकृति के रहस वक्ष को,
भौतिक जग के गहन रहस्यों को अधिगत कर
जुटा रहे मानव भावी के उपादान नव।
किंतु मृत्यु के दारुण पंखों की छायाएँ
उन्हें ग्रस्त कर रहीं, स्वेद से सिंचित उनके
रचना-श्रम का ज्ञान, अमृत का बदल गरल में।
आज नाश की मुट्ठी में बंदी विश्व सृजन।

स्वदूत

वहाँ विलात कमी है इस वैज्ञानिक युग में।
एक ओर है महत् मनुज का रचना संचय,
और दूसरी ओर बृहत् खाई अभाव की
मध्य युगों के अभिशापों से भरी भयानक
रूढ़ि रीति शोषण के कर्दम का मुँह बाये —
मानवता के उर में पड़ी घृणित दरार सा।
इसी बदलता मानव का भीतर बाहर में
अतिक्रम कर अपनी सीमाओं के संकट का।

वह देखो, समतल प्रसार फैला दृग सम्मुख
जहाँ छाँह वन-ग्राम नगर, गृह, हर्म्य, राजपथ
मृण्मय प्रतिमाओं से विगत विगत युगों के,
उपचेतन के मानचित्र से अस्तव्यस्त वा
मनुज सभ्यता की नापों से भ्रान्ति धरित्री पर
ज्यों मिटते पदचिह्न शेष हों काल पथिक के!
वह देशों में खंडित रुद्ध धरा का मानस
आज घृणित स्पर्धाओं, स्वार्थों से आतंकित,—
घनीभूत होती विनाश की भीषण छाया
जन भू के मुख पर विषाद नैराश्य से भरी!
मँडरा रहे विहग भीम धूमाकार क्षितिज में,
लगता हरित प्रसार सिंधु सा आंदोलित अब,
आवेशों से उद्वेलित उद्भ्रांत नागरिक
नव युगांतर का आवाहन करते भू पर!

[गान]

पुरुष स्वर

एक वृत्त हुआ शेष
वृत्त शेष, वृत्त शेष!
जन मन में मर्मर भर
नव युग करता प्रवेश!
वृत्त शेष!

स्त्री स्वर

युग निरत प्रहर घोर
छाया तम आर छोर,
दूर अभी दूर भोर
दिक् कंपित भू प्रदेश !
वृत्त शाप !

पुरुष स्वर

पावक का लोक अमर
आकुल करता अंतर,
मृत्यु घूम रहा घहर
गरजता क्षितिज अशाप !
वृत्त शाप !

स्त्री स्वर

निद्रा से क्लान्त नयन
स्मृतियों में उपचलन,
मानस में युग स्पंदन
प्राणों में नरामय !
वृत्त शाप !

पुरुष स्वर

सिहर रहे मृत्त भुवन
जागत नव नव चलन,
धरते नव स्वप्न चरण
मिटने का नव्य [illegible] !
वृत्त शाप !

एक पुरुष

जाति विप्लवों भू युद्धों, गृह संघर्षों में
ग्रस्त, क्षुब्ध, युग आंदोलित अब धरा चेतना,
भूमि कंप शत दाह रहे हों भू मानस में!
कैसा दारुण युग आया विषम निराशा का!
ध्वस्त हो रहे संस्कृतियों के सौध रत्न स्मित,
भू लुंठित स्मृति शिखर पतित युग आदर्शों के
नए भेद संगठन रचता मानव मन के!
धर्म जाति आचार गिर रहे औंधे मुँह हो
हँसमुख तम से भरे अतल कामना कूप में!
बुद्धि भ्रांत जीवन के आवेशों से चंचल
भाग रहा मन बाह्य जगत के जलते मरु में
मृग मरीचिका पीड़ित, छल जल छाया मोहित!

स्त्री स्वर

सिंहासन लुट रहे टूटते छत्र रत्न प्रभ
ज्वलित तारकों से भू रज पर रूढ़ि रीति के
दुर्ग ढह रहे,—दीर्घ भ्रांत निश्वासों के गढ़
भिल्ली झड़त! उथल पुथल मच रहा धरा के
जीवन प्रांगण में, दारुण झंझा कंपित ज्यों!
धधक रहे उपचेतन के शत ज्वालामुख गिरि
युग युग के आवेशों की लपटें नसर कर,
भीषण छायाओं से उद्धतित जन मन अब!

परिवर्तित हो रही वास्तविकता जगती की
नव रूपों में प्रकट हो रहा जीवन शाश्वत,
विश्व विवर्तन को धारण करने में सक्षम!
शाश्वत तथा अनित्य विरोधी तत्व नहीं दो,
एक सत्य ही विविध स्वरूपों में अनाहत,
परिवर्तन की अविच्छिन्नता ही शाश्वत है,
भूत भविष्यत् वर्तमान हैं गुम्फित निसम!
जीवन-सक्रिय देश काल में विस्तृत शाश्वत,
सक्रिय आज परिस्थितियों की रुद्ध चेतना
बहिर्दृष्टि विज्ञानों से नव बल संचय कर!
बदल रहा जीवन यथार्थ, मानव पदार्थ अब,—
नव मानव मूल्यों में कुसुमित सामाजिकता
विश्व विषमताओं में नवल समत्व भर रहा!

स्त्री स्वर

महत् प्रयोग धरा जीवन में आज हो रहे
एक बृहद् भू भाग रक्त कर्दम से उठकर,
दैन्य, निराशा क्षुधा, ताप के घृणित नरक के
अंधकार को पार विषमता की कारा से
नव मुक्त हो, अमानुषी सत्तों स्वार्थों की
रीढ़ तोड़ कर, मध्ययुगों की जीवन जर्जर
परम्पराओं की सीमाएँ छिन्न भिन्न कर,
भू जीवन की मूल प्रेरणा से उन्नमित
आ समत्व की धरा स्वप्न निर्माण कर रहा
जन बल की संगठित लौह संकल्प शक्ति से!

दूसरा स्वर

मुक्ति भी भरमाती है इस युग मानव को,
स्वप्न नष्ट हो गये गांधी मानवता के !

[जनता का …]

इस प्रकार के दारुण भयद स्थान गामी
दोनों छोरों पर हमको मगर तुम्हारा !
पर, दोनों का धरा स्वर्ग का आवागमन दे,
सम्प्रति भय, अन्याय यातनाएँ सहता जो
बाधित करने उसको बहुविधि आतंकित कर
बुद्धि विवेक विहीन बना मानव-जाति को —
क्रूर संघ स्वार्थों का साधन बना मनुज को !
और दूसरा रिक्त शून्य में पंख मार कर
ऊपर ही ऊपर उड़ने हैं ज्योति अंध हो,
स्वप्न पलायन सिखा जनों को अविनाश में !
दिव्य स्वाति के पानी रटते प्यासे चातक
भावी के आकाश कुसुम निज चंचु में लिये,
कुम्हला उठते जो जीवन के शीत ताप से !

स्त्री स्वर

सच है, यह दिन के प्रकाश सा स्वयं स्पष्ट है !
ये दोनों ही मृत पलायन वर्तमान से !
सत्य भविष्यत् नहीं, मृतमय वर्तमान है
वही भविष्यत् होगा जिसे बनाएँगे हम !
वर्तमान, जो चिर अतीत की परंपरा का
मूर्त रूप है, वही सत्य है, वही प्रगति का
युग विकास का मापदंड है,—यह अकाट्य है !
जैसा मैंने कहा पहले,—हम जो जीते हैं,
हमारा सत्य है ! वर्तमान क्षण के पुट में ही
हमें बाँधना होगा जीवन के शाश्वत को !

[करतल ध्वनि]

दूसरा स्वर

यही सत्य है ! सुनो बंधुओ, हमको दोनों
पलायनों से लड़ना होगा, जो भविष्य के
मृग मरु में भटकाते मन को ! मूर्त प्रगति के
नहीं शुष्क सामाजिकता में, जो स्व शासित
नित नवीन आदर्शों से उत्तेजित रहता !
मानव मूल्यों का है स्रोत मनुज के भीतर,
जीवन मर्यादा में विकसित सहज व्यक्ति में !
अस्थायी हैं जब जीवन के मूल्य बहिर्गत
सिद्ध कर दिया यह युग के इतिहास ने स्थिर
यांत्रिक, जन तांत्रिक प्रयोग बहु कर जन मन में !

स्त्री स्वर

अतः सत्य जो हम संस्कृति के अग्रदूत हैं,
मानवता के ज्योति शिखा वाहक युग युग के—
यही समस्या आज हमारे निकट उपस्थित
कैसे हम असुरों के कर से ज्ञान अमृत-घट
देवों के हित करें सुरक्षित, युग गंगा की
सुधा धार को छिपा श्रवण पुट में फिर अपने
दशानन का मानस वैभव मथित जिसमें !
यह गौरव अधिकार सदा से रहा हमारा
हम जो ज्ञान प्रबुद्ध, अतः गंभीर जो सब के,
वहन करें हम धरती पर संदेश स्वर्ग का,
मानव मूल्यों की मर्यादा को विकसित कर !
आज जगत के सम्मुख प्रस्तुत जटिल प्रश्न यह
साध्य और साधन हो जग में पूर्ण समन्वित !

पुरुष स्वर

सामूहिकता पूर्ण न कर दे व्यक्ति व्यक्ति की
स्वतंत्रता, संकल्प शक्ति, उन्नत विवेक को

इससे पहिले हम जो कुछ भी हैं मानव हैं
हमें संगठित हो कर सब तत्पर रहना है
निज महान आदर्श के लिए, भू मंगल हित !
हम शूद्र, जो वंचित हैं अभिशापित हैं,
हम्हीं सत्य हैं शेष सब भूभार मात्र हैं,—
क्योंकि नहीं परिचित वे व्यापक भू जीवन से,
विश्व सभ्यता की गति से मानव संस्कृति की
सूक्ष्म, रहस्यमयी अति चेतन विकास परिणति से !

प्रथम स्वर

मुझे बालक ने स्वर में आश्वस्त हो गया !
मित्रो, मूल्यों का उद्धार हमें करना अब
पुन शक्ति के भीतर उनको स्थापित कर फिर !
हमें विशिष्ट मनुष्य चाहिए जो प्रतिभा के
पंखों में उड़ सकते मन के अंतनभ में
स्वगंगा सा जहाँ उच्च मानव मूल्यों का
चिर अनादि से अंतर्हित विस्तृत छायापथ में !
अल्प सत्य कुछ ही हम कर सकते अवगाहन
उस अंतःसलिला धारा में अंतश्चेतन !—
गुरुतम युग दायित्व हमारे कंधों पर
आज आ पड़ा, हम जो भू के भारवाह हैं,
निखिल विश्व जीवन चिंतन, सौंदर्य बोध के
निरवधि सागर का मंथन कर वर्तमान के
छोर छोर से मानव मूल्यों की मर्यादा
सार रूप में संचित कर, उस जटिल सत्य को
निज विवेक सम्मत स्वतंत्र संकल्प शक्ति से
सृजन कर्म में परिणत करना हमको शाश्वत !—
विकृत प्रचारों भावावेशों से हत, मूर्छित
शब्द शक्ति का नवोद्धार कर नव मूल्यों का
उसे प्रतीक बना मार्जित रुचि से सँवार कर
मानव के भीतर करना है हमें प्रतिष्ठित !—
बहिरंतर का शुभ्र समन्वय श्रम है केवल !

तीसरा स्वर

कैसा कुसुमित शब्द जाल है! सुंदर वाग्छल!

स्त्री स्वर

कायरता से बचना है प्रतिभावानों को!
कायरता से ग्रस्त रहा इतिहास मनुज का,
कायरता से विमुख हुआ प्रतियुग में मानव
निज अंतर सत्यों से, सत्यों की पुकार से!
वर्तमान में द्रष्टा रहकर—रहते अतीत के
मृत रूप साम्प्रत क्षण को, उसके प्रति जाग्रत,
हमको निज निज स्थिति से पुन स्वधर्म के लिए
आत्म यज्ञ में पूर्णाहुति देनी है—

तीसरा स्वर

उसको
लोक यज्ञ कह, नव मूल्यों का व्यक्तिवाद बन!
सामाजिकता निगल न दे जिस वर्तमान के
सत्यों के प्रति जाग्रत वैदिक युग व्यक्ति को
जो छाया सा काँप रहा जनभय से मूर्छित,
सावधान रहना है हमको—

एक स्वर

क्या कहते हो?

तीसरा स्वर

सामूहिकता कुत्सित न ... विस्मृत ... की
परंपराओं के हम ... कभी ना,
हमको रहना है मानव ...—

दूसरा स्वर

चुप रहो!

तीसरा स्वर

हमने अपने ही भीतर से युग जीवन का
जटिल जाल है बुना पहनता जो निज, निखर
स्वर्णिम मर्यादाओं के ताने बाने में
बँधा है हम आप स्वयं बँध उलझा है जो
श्वास मात्र से—निर्मल आभा से दुग्ध झाग
जगमग कर उठते, शशि किरणों से सम्मोहित!
भाव जगत् यह मूर्त जगत का सूक्ष्म गहन, नत,
जो कि असुंदर क्षण को भी सुंदर कर देता
निज प्राणों का रस उँडेल कर अवचेतन से!
हम, सब, नव प्रयोग कर रहे मानव मन में!

स्त्री स्वर

व्यंग्य मत करो, बंद करो—

एक स्वर

यह सच कहता है!

तीसरा स्वर

यह विशेष अधिकार सदा से रहा हमारा
हम जो चेतन प्राण अल्प संख्यक हैं जग के
हम नव युग सदृश वहन कर अब धरा में
चरवाहों से जन भेड़ों को रहे हाँकते
मानव मूल्यों की नव मर्यादा घोषित कर!
जन धरती में फलती नहीं सुनहली संस्कृति,
वह उगती कुछ बुद्धिजीवियों के मानस में,
केसर की क्यारी हँसती ज्यों सरोवरों में!

एक स्वर

इसे चुप करो!

दूसरा स्वर

इसे पकड़ लो, मत जाने दो!

स्त्री स्वर

यह कोई भेदिया, गुप्तचर लगता निश्चय!

[[illegible] कोलाहल]

स्वदूत

यदि फूलों की रक्त शिराएँ उत्तेजित हों
तो उनके मुख चमक सकेंगे कभी सूर्य से?
वे निरस्त कर पायेंगे धरती के तम को?
ह्रासोन्मुख संस्कारों का उन्माद मात्र यह!
तर्कजाल से यदि निर्मित होता मानव मन
तो न पनपता तरु-जीवन आकाश लता से?
महत् भाव ही मात्र विभूषण मानव मन के
मुकुट पुष्प ही पहना सकते तरु शिखरों को!

स्वदूती

उधर चलें अब गौरव, हिम प्राचीर पार कर,
देखें मलयज सुरभित स्वर्णिम शस्य भूमि को,
सत्य विश्व के मुग्ध दृगों का स्वप्न रहा जो!

स्वगत

पकड़ भागते पहुँच गये लो अपने मन की
अमित भूख,—सरल रंग अब फैलाता लाना!

स्वन्त्रता

यहा, दागता शस्य हरित भू मरान्त मशिन्गी,
मान गुंजरित स लगत गृह कुत्र नगर था
अमर शिश्र गायक था मन स्वर लहरी म !
यहा महत् सान्रतिक सत्ररण नभ ल रहा
मानवीय गरिमा म प्रतिष्ठम रत स्म युग का
हृदय स्पश करा म पारस मणि का मन्त्र !—
ना पशु तेन म उठा मनुत्र का मातम तल पर
भावना स सत्य ज्ञान सयम र स्तर पर,
साम्य चतना स निज निर्मित करता जग का !

स्वन्त

स्मृति पट पर नव आभा रखाश्रो म अंकित
प्रकट हुआ युग पुरुष अभी इस पुण्य भूमि में
जा अनादि स स्वा का प्रिय रहा विश्व में !
जिसकी मनागुहाए नवश्रद्धा से दीपित
जावन पावन रहा, अविद्या तम स वंचित
उपचतन निश्चतन स्तर तक आलाकित हा !
यहाँ असत् पर सत् की तम पर सतत ज्याति की
तथा मृत्यु पर विजय हुई अमततत्त्व की महत् !—

स्वदूता

यहा पक से ज्योति पद्म सा उठकर निहँसा
युग मानव रह लाक सत्य से अनुप्राणित हा
संयम तप से दीप्त, आत्म स्मित सदाचार की
रजत शिखा कर म धर नरक हिंस जगत् का
महत् साध्य अनुरूप द गया जा नव साधन,
प्रेम अस्त्र स जीत घृणा का,—स्थितप्रज्ञ मन !
यदा स हत जजर भू पर विश्व नय हित
सबल अहिंसा क प्रयाग कर जाग्रत् सक्रिय
सामूहिक स्तर पर,—जन मन को द्वेष मुक्त कर !

सारण

आत्म शक्ति से जूझ संगठित पशुबल से वह
प्रवृत्तियों के अंध प्रयोगों की झंझा में
रहा अडिग, चेतन पर्वत सा नैतिक बल का।
सच है, स्वर्णधरा यह उसके अथक यत्न से
युग युग के पाशों से जीवन मुक्त हो पुन
मानव गौरव वहन कर रही, शिखर मुकुट बन
कीर्ति स्तंभ सी उठ उसके तप आत्म त्याग की।

स्वदूत

वह देखो नव जीवन सा संचार हो रहा
जन ग्रामों में आज, मूक कर्मों में रत जो।
नव वसंत में स्वप्न मंजरित कुंजों से हँस
दिक् कुसुमित जन जाग उठ रहे, श्री सुख कूजित।
नव आशा आकांक्षा से मंजरित जन मन अब
नव्य चेतना से दीपित, आश्वस्त, उल्लसित।
हृष्ट पुष्ट तन शत शत पद श्रमदान कर रहे
नव जीवन निर्माण हेतु, जन मंगल प्रेरित।

स्वदूती

आह पर निर्मम संस्कारों से पीड़ित यह भू।
करुण दृश्य देखो वह कुंठित मानवता का,
युग युग के शापों विश्वासों से शासित जन
दैन्य दुःख के पंजर से लगते जीवन-मृत॥
मिट्टी के खंडहर घरौंदों में पुंजित से
रेंग रहे हैं कीड़े हीन घिनौने कर्दम में।
शीत ताप आँधी पानी में वन-कुसुमों से
क्षण भर खिलकर, कुम्हलाकर, आस्मि विगत हो
दिखना हो अर्पित, निष्ठुर नियति पराजित।

स्वप्न

पर देखो, संध्या में हँसमुख हरित द्वीप से
धीर साध ग्राम जग रहे जीवन नव,

नि शोभा म निप पु नी मस्ताना म,—
गाम्य शीम्न ममरागा र उगा रिद्रुज म
लार ननना मग्गो, गता म ग्नुपागिना।
मघ निर्झरिन यहा हो रगा गागर नाना
रति स्मभार नरिम्र गि।। भू क भागो म,
मर माउ सत्ता क अरयर म ग म्पगगि।,
मधुरता म गुजित जा नीरा राग म।
धन्य अहिंसक भूमि सत्य पर प्राण प्रतिष्ठित,
मानवीय साधन स सम्भव जहा जन मंगल।
विश्व शांति रामी य जागण भू क प्रमी
सरल संयमित जीवन निर्भर श्रम पर निर्भर।
गृह धंधा उद्योगा म तरुओं रम्मों म
बनते सम्पन्न आत्म तुष्ट जन जीवन पन जो।
लोक जागरण क स्वर सारिर प्रयत्न य
रजत किरीट नाग निन्नय मानवता क—
रक्त मत्त चिर शांति क्रांति क अग्रदूत रा।
प्रतिध्वनित स्वर भू मगल क गीता स
पुण्य धरा क ग्राम नगर कानन, नग निर्झर।

[विश्व शांति शोतक वाद्य सगीत]

मगल गान

गाओ जन मगल ह।
शस्य हरित रह सतत
स्वर्णिम भू अचल ह।

शांत रहे नील गगन
शांत सिंधु वारि गहन,
शांति दूत हो दिशि क्षण
विश्व शांति शतदल ह।

सृजन रत निरत जगत
घृणा द्वेष स्वार्थ विरत,
प्रीति ग्रथित हृदय प्रणत,
पूजित हो श्रम फल हे !

भ्रांति रहित हो जन मन,
वैभव स्मित जग जीवन,
शोभा अपलक लोचन,
कुसुमित दिङ् मंडल हे !

शांत हो समर प्रमाद
शांत मनुज का विषाद,
शांत निखिल तर्कवाद,
शांति स्वर्ग भूतल हे !

स्वदूत

चलो, चलें औद्योगिक केन्द्रों में भी क्षण भर,
घनी चिमनियाँ जहाँ उगलतीं धूम निरन्तर
धूमिल कर मानव भावी के चिर क्षितिज को !
जहाँ उमड़ते विश्वशांति के प्रलय बलाहक
महायुद्ध की लपटों पर शत धार बरसकर
तथा शांत करने भू उर की क्रूर अग्नि को !

स्वन्ती

यह देखो कुछ विश्रुत देशों के अधिनायक
विश्व शांति के लिए यहाँ सम्मिलित हुए हैं,
चिंतातुर मुख, कुंचित भ्रू, उत्कंठित अन्तर !
सोच रहे मन ही मन, कब, किस विधि से संप्रति
शांति हमारे स्वार्थों में स्थापित हो सकती !
किंतु व्यर्थ सब ! विधि को ज्ञात क्या कारण है !

नर शाखा म लिप दृ। जन मन्गारो म,—
म म्न नी। मन्दारो क उार हिम ग
लार धारा मगा, ग ो म पानीन्दा।
संघ तिहि। मही है। वहा मार जात
नि रमार गिर धि।। भू क आगा म,
गर मात गता र अरदर म म प्रदग्नि,
मधुरा म गजित जन जीरा रिप म।
धन्य चौहगार भूमि गत पर प्राण प्रतिष्ठित,
मारताय माया म ग्राम जहां जन निम।
विश्व शारि कामी म जनगण, भू क प्रश्नी
मरल सयमित गारत निरा श्रम पर निर्भर।
गृह धरा उदागा म तरुआ पन्गों म
चलते सम। आम तुण जन जीवन पर जा।
लाक जागरण क नार सादित प्रथत य
रजत किरीट ग्राग हिन्दन मारतना क—
रत मत चिर शांत मांति क पदुत पा।
प्रतिध्वनित स्वर भू मंगल क गीता म
पुण्य धरा य ग्राम नगर, ग्राम, नद निर्भर।

[विश्व शांति योजना वाद सभान]

मगल गान

गाओ, जन मगल हे।
शस्य हरित रहे सतत
श्यामिम भू अचल हे।

शात रहे नील गगन
शात सिंधु वारि गहन,
शांति दूत हो दिशि क्षण
विश्व शांति शतदल हे।

सृजन श्रम निरत जगत
घृणा द्वेष स्वार्थ विरत,
प्रीति ग्रथित हृदय प्रणत,
पूनित हो श्रम फल हे !

भ्रांति रहित हो जन मन,
वैभव स्मित जग जीवन,
शोभा अपलक लोचन,
कुसुमित दिक् मंडल हे !

शांत हो समर प्रमाद
शांत मनुज का विषाद,
शांत निखिल तर्कवाद,
शांति स्वर्ग भूतल हे !

स्वर्दूत

देखा, जलें औद्योगिक यंत्रों में भी क्षण भर,
धनी बस्तियाँ जहाँ उगलतीं धूम निरंतर
धूमिल कर मानव भावी के घिरे क्षितिज को ।
जहाँ उमड़ते विश्वशांति के प्रलय बलाहक
महायुद्ध की लपटों पर शत धार बरसने
तथा शांत करने भू उर की मरु अग्नि को ।

स्वर्दूती

यह देखा कुछ विश्रुत स्वर्गों के अधिनायक
विश्व शांति के लिए यहाँ सम्मिलित हुए हैं,
चिंतातुर मुख कुंचित भ्रू, स्फारित नस्वर !
बात यह सच ही सखि, स्वर, विश्व में संप्रति
शांति हमारे श्रमों से स्थापित हो सकती !
किंतु व्यर्थ सब ! विधि का बाम क्या सहज है !

कुछ भी निर्णय नहा कर सका शान्ति मिलन यह,
नया होता आया सदा हुआ नया ही।
फिर निविडान्ध में सर समय ना गया,
स्वार्थ त्याग करना ही वीर यहा है उत्तर ?
आज गभीर समस्या है भू तन के सम्मुख
युद्ध नहीं तो क्या न तत्पर शान्ति के लिए ?

म्यन्त

पर देखा वह नित्य शान्ति की रक्त शिखा सा
जो सत्त्वक सैन्य है हताश वह नहा नैतिक भी।
मध्यमार्ग का पथिक, तटस्थ मन्य हिंसा म,
पशुशक्ति का पोषक महर्जीवन का घातक
घृणा द्वेष स निमग्न प्रमग्न पग द्रव्य भी जो
चिन्तन क्षण तन निज महदाकाक्षा सा उन्नत,
चुप न रहेगा वह जूझेगा धर्म चक्र ले,
जन मंगल का लोक न्याय का पक्ष ग्रहण कर,
निज नैतिक बल डाल सत्य की विजय के लिए।

म्यन्ती

सच कहते दिग्भ्रान्त जगत का दीप स्तम्भ वह
उसके ऊपर वक्र हस्त है लोक पुरुष का।
आह घोर शिविरों म आज बँटा भू जीवन,
घृणा द्वेष स्पर्धा के दारुण दुर्ग सगठित,
हिंस्र प्रचारों के भागर चीत्कार भर रह
उग्र मतों के तर्कों वादों में भनभन कर।
रंग बदलते रह रह अवसरवादी गिरगिट
रटते अंध पठित दादुर अपना अपना मत
उत्कुल भ्रमित जीवन कर्दम म बैठ फुलाकर।
आवेशा के नाग लोट, फुफकारें भर-भर
जन मन को करते विषाक्त फन खोल भयंकर
रुद्ध वासना के घोंघे केंचुए, सरीसृप
रेंग रह निश्चेतन तम म धरा नरक के।

स्फूर्ति, गति आकार, अर्थविन्यास अनकों
पग लड़खड़ाते विभीत गेंदुर उतर-से
गहन अगरी गाहा म पड़ जन-मन का!
भूख-भूख चिल्लाते कपन कानन पत्तर,
प्यास प्यास स्मर दग्ध, स्नायुओं क व्रण विवर,
महाह्रास म जागत तम का भार ला रहा
पशुओं क स्तर पर प्रवृत्तिनोदा मानव गिर॥

स्वप्न

अह, मन म अवसाद घिर रहा तम स्पाल-सा
युग मानव का अध नियति का दृश्य स्मरण कर।
वह देखा, धूम्र-कण उड़ता ज्वलित मृत्यु विगलन
विद्युत् आघातों से! विकट प्रयाग हा रह
पृथ्वी पर जावन नाशक परमाणु शक्ति क!
मनाओ का कुसुम धाप सुन पड़ता कुमका?
लौह पगा म हिल हिल उठता प्रस्त धरातल,
प्रतिध्वनित हा रही मृत्यु की चाप दिशा म,
भापण रण यानों म मंडित उदर गगन का,
उगल रहा गहार अग्नि रसना का कटु विष
मृत्यु धूम्र उड़ रहो धरा में विद्युत् सक्रिय।
महाप्रलय की दारुण छायाएँ मन्डराता
अँधियाली क आवर्तों म लाट धरा पर,
विश्वयुद्ध का विकट धारणा करना का अब
विस्तारक सी, रुद्र इयाम चानव क मुँह म!
चला, लौट हम चलें युगों की छाया में फिर,
नहीं, काल महत् हम हा न म न रहा
मानवता क भरसत दिन रह लाक म!

[नवन आरम्भ पूरव वाद मरण]

अहा, मानुषों पर गड़ कर हम देखा का
तपोभूमि में पहुँच गये फिर नभ ज्योतिर्मय!

पौ फट चुकी ! कुहला क्षण युग की द्वाभा का
मोहित करता चित्त, रुपहली भोर राग की
स्वर-संगति में सूक्ष्म चेतनातप सा गुंफित !
मौन लालिमा तीर रक्त शतदल सा प्रहसित
खोल रहा दल पर दल —निखिल दिगंत प्रहासित !
ज्वलित प्रवालों के पर्वत से खड़े हिम शिखर !
रक्त पीत सित नील कमल नव स्वप्न वृंत पर
सस्मित पलकें खोल रहे निज अर्ध निमीलित !
जाग रहे फूलों के रत्नासनों पर साथ
प्रेम मुग्ध नंदी मधुकर, उन्मन गुंजन भर !
पारिजात मंदार लताएँ लगीं सिहरने
मुग्धाओं सी हरि चंदन तरुओं से लिपटीं,—
खिलने लगे अशोक पदाघातों की स्मृति से,
देवदारु के शिखर हो उठे, लो, स्वर्णप्रभ !
निश्चय देवों के सँग रहता स्वर्ग निरंतर
तपोभूमि को सृजन भूमि में बदल अलक्षित !
सुनो, जागरण गीत गा रहे वैतालिक सुर,
कमलों की अंजलि भर, जो प्रतिमान सृष्टि के !

[प्रभात वादित्र संगीत तथा सहगान]

रक्त कमल, श्वेत कमल
खुल ज्योति पलक तरल !

रक्त कमल जीवन स्मित
श्वेत कमल शांति जनित,
खोल रहे रश्मि स्फुरित
मानस में ज्वाला दल !

नील कमल श्रद्धा नत,
स्वर्ण कमल भक्ति प्रणत,
कर्दम में खिले सतत,
प्रीति मधुर अंतस्तल !

अमित सुरभि रही निखर,
गूँज उठे लोक निकर,
जाग उठा जीवन सर
स्वर्णिम लहरें उच्छल!

नई चेतना हिलोर,
शोभा छायी अछोर,
होने को नया भोर
गाओ सुर, जन मंगल!

स्वर्दूत

देखा, कौन खड़ा हिम अंचल में वह तापस
आरोहण करता मन के दुर्गम शिखरों पर
जीवन की मधुभूमि छोड़ कर कैसे मानव
यहाँ पहुँच पाया? देवों से हित जो रक्षित!
वह क्या कोई प्रेमी पागल अथवा साधक,
या वह जीवन द्रष्टा कोई ऊर्ध्वारोही?
अन्न प्राण मन के प्रिय भुवनों का अतिक्रम कर
अधिमन के शिखरों पर जो अटका निःशंक सा,—
हाय, अगभर इच्छाओं का यति का अन जन!

स्वर्दूती

ओ, वह कोई मौन दृष्टि की लगती निश्चय,
लोक प्रेम के महत् ध्येय से प्रेरित हो जो
शून्य मनस में खोज रहा मानव भविष्य को,
स्वर्ण मुकुर सा ज्योति स्फुरित जो मनोगगन में!
अपलक अंतर्दृष्टि महत् स्वप्नों से विस्मित
पार कर रहा दुर्गम भविष्यत् का स्वर्णिम नभ,
दुर्दिन पलकों पर उड़ता सौन्दर्य निर्मिता
साम्य पवन तुग, पार अनन्त, कल्पना विहग वह
मर्त्य भू जीवन मा न गुह्यग, शान्ति नवन!

सृजन प्राण वह विगलित मर्मभर गगन उभरा !
गया ध्यान में गुँथा सगत भाग्य रंगा वह
अब स्वर्गों में —आत्म यति, रमा में पीड़ित !

[।ए ण्य सूता र्यो चगमार]

ज्ञान द्रष्टा

यदि समाज समान गति —रुको विडंबना !
साध्य प्रथम या साधन —रुका तक उठा है !
आस्तिकता में एक नास्तिकता में नास्तिकता,—
बाहर भीतर शब्द बात मर रक्त रागरंजित !
यांत्रिक बौद्धिक तत्व भिन्न दृश्य । के ऊपर
भीत बुद्धि का प्रेत समस्या ! मानव हत,
जो अरण्य रोदन करता युग के मानव में
निर्जन खंडहर में भिनभिना भारत भारत स्वर !

सत्य एक है यदि समान, आत्म एक जड़
चेतन बाहर भीतर सब किस पर अवलंबित !
आंतरिक गति में विरोध जग के अनुप्राणित,
विश्व संचरण तारा का नयम संतुलित !

स्पदत

मानस मंथन चलता युग मानव के भीतर !

ज्ञात द्रष्टा

देख रहा मैं नरक बन गया स्वर्ग बन गया ।
बरफ बन गया निराकार जमकर युग युग का
मानव का चैतन्य शिखर —नीरव, एकाकी
निष्क्रिय नीरस जीवन मृत – सब बरफ बन गया !!
रोष मात्र जड़ शीतल – ताप प्रकाश नहीं कुछ
ढेर, बुझे हुए अंगारों में पानी का
ताप नहीं मन का जाग्रत प्रकाश नहीं अब !

चट्टानों पर आसन मार्थी शक्तियाँ की,
नभ फलक पर फहर शत-शत ध्वज रक्त के,
अट्टहास भरते जो निर्झर गाम गान कर
महाकाय चट्टानों के अवशेष प्रगतन !
चमक चमक चिल्ला उठता किरणों प्रकाश की
सतरंग छायाभासों का चकाचौंध में
प्रतिध्वनित है। मन शिलाओं पर बिखर गिरि !

स्वप्नी

आत्म विभावर देन फिर आज स्वागत की !

ज्ञान द्रष्टा

राग विरत, विराग शाश्य का मूर्त रूप यह
निरासक्त निष्काम, शांति का स्तूप सा मना,
चारन प्रत्याख्यानों के क्षण ऋषि साध सा
नेति नेति का आत्म विधा का सुगम गान !
मृग गाय प्रेरणा स्नान बाहर भीतर के
शीतल, हिम शान्त चारन का नव समाधि यह !
मंद गन्ध भैरव नामरता महाशून्य का
घर रमता महामृत्यु के प्रान्त पर सा !
फिर ज्योति बन हाय, जल गया तन धरणी का
रूप रंग रस स्पर्श सगर चारा उतर सा,—
प्राणों के मारभ पर्वों में मन गत्जित !!

स्वप्न

मध्य युग म ... निधर, ... के
तृप्ति कर दो ... प्रगति ... ... !

ज्ञान द्रष्टा

विगर विगर पर ... ...
... ...

हँसती रहे न प्राणों की मर्मर हरियाली
लोट लपटती लहरों में धरती की रज पर ।
प्रणय गीत गाती न मधुकरी, मधु स्वरों में
मुकुलों का मन गूँथ सुरभि गुंजित पंखों में
दूर न पाती फिरी सतरंगिनी ज्वाला पर उड़
मूर्त प्रणय गान अमृत विदेह नाद में ।।

मदन्ती

विद्या और अविद्या में संतुलन हो गया ।

[भावोद्गार आत्मिक संगीत]

मौन द्रष्टा

आह इन प्राणों का स्पंदित ताप चाहिए
जीने को इस मन का भावोद्गम चाहिए
हरित प्राण उल्लास न रहित इस युग-युग के
पतझारों के निर्जन रूक्ष कराल ठूँठ को
गंध गुंजरित रस कुसुमित मधुमास चाहिए ।
गला सके जो इसके भस्माकृत तुषार को
मिटा सके भावुक विराग भारी विषाद को,
आलोकित कर सके घोर नैराश्य तिमिर को
जकड़े है जो इसे श्वेत कंकाल हास्य से ।।
हाय खो गया शुभ्र तमस में धरा शिखर उठ
हाय सो गया शून्य अतंद्रा में जाग्रत मन,
भटक गये नीहार मरुस्थल में चरण वन्दि के,
देशकाल से परे, नास्ति में, मौन के लोचन
स्वप्नहीन तंद्रा में रह खुल गये निर्निमिष —
ध्यानावस्थित स्थिर निष्कंप अरूप प्रतीक्षित ।।
आत्म नग्न नर, रिक्त देह मन के वैभव से,
अमल धौत पट सा — धुल गये प्रकृति के सब रँग ।

[निर्जन विषादपूर्ण वाद्य संगीत]

स्वर्दूत

नीड़ित मन में लुप्त हो गया उत्स भाव का ।

शांत द्रष्टा

इन इंद्रियों के स्वर्णिम पट में लिपटाओ
रूप गंध रस से मज्जित भूषण पहनाओ,
इसे खुले द्वारों से, भाव पगों से गुंजित,
जन भू के विस्तृत पथ पर चलना सिखलाओ ।
इस ऊर्ध्व नभ के प्रकाश को आत्मसात् कर
जन भू जीवन में मूर्तित करना बतलाओ ।
जिससे फिर बन सके अचल, स्वर्णिम स्रोतों में
भर भर कर बह सके वेग से नव गति पाकर
शाखा में हो द्रवित मूक प्राणों की जड़िमा
लोक लिपट भू रज में हो नव भाव प्ररोहित ।

[आगमनागम सूचक वाद्य मधुर]

स्वर्दूती

महत् समन्वय आज चाहिए युग मानव को
देव मनुज पशु जिसमें हों अंत संयोजित ।

शांत द्रष्टा

देख रहा मैं खड़ा धरा के शिखर पर
युग प्रभात नव जन्म ले रहा स्वर्ण क्षितिज में,
स्वर्ण शुभ्र धर रश्मि-मुकुट भू स्वर्ग भाल पर ।
युग-युग से संचित निरुद्ध आलस्य, स्वार्थरत
भारत के अध्यात्म ज्ञान की ज्योति मुग्ध कर ।

द्रवित हो रहा शतियों का चैतन्य सनातन
सिंह मूक आ रहा विपुल घन से होकर,
चारों से जाग उठ मानो स्वर्ण शृंग पर ।

फूट रहे शत स्रोत किरण प्राणों में गुंजरित
धरती का चिर प्रीति गलित जीवन में मग्न!

शांत हो रहे मानव के अभिशाप युगों के,
पुन मिल रहे बिछुड़े जड़ चेतन, जीवन मन,
मानव की आत्मा में नव प्राणों से स्पंदित!
एक विश्व-जन-जीवन निश्चय,— वसुधा हो
मनुज सत्य का अमर मूर्ति जीवित प्रतीक है
अमित वरागमयि जो शाश्वत पावनमयि जो!
एक ओर चैतन्य चिरंतन, रश्मि परा स्मित
भावों का सतरँग प्रकाश बरसाता अविरत,

गुह्य दूसरी ओर अकृत अतल जड़ तम है,
धारण करता जो अपने अविकार गर्भ में
जन्म मरण भव जीवन क्रम सुख दुख के स्पंदन!
देख रहा मैं मुक्त धरा के अंतर्गभ से
अग्नि स्तंभ उठ रहा तप्त हेमाभ शैल सा,—
महा आगमन का सूचक यह ज्योति पर्व क्षण!

[यवनिका सूचक मधुर भाषण वाद्य संगीत]

स्वदूत

निश्चय यह मानव भविष्य द्रष्टा नव युग कवि,
भूत भविष्यत् के पुलिनों पर बाँध रहा जो
स्वप्न पगों भावित भाव सेतु, शत इन्द्र धनुष स्मित —
गरज रहा नाच उद्वेलित जन युग सागर!

[तीव्रतर वाद्य संगीत]

स्वदूती

वह देखो वह झंझा रथ पर चढ़ कर आता
नव युग का मानव उदात्त जीवन पर्वत सा
धरा पंक का दग्ध मनोनभ को दीपित कर!

युग-युग के पतझर झर पड़ते उसके भय से
धूल धुंध पत्तों के निर्गम अग्नि बाज नव,
मृदु नरडर, अंधड़ उसके साथ खेलते
मत्त तुरंगों से उड़, दिक्-कंपित कर भूतल
रथ चक्रों के दारुण रव से बधिर कर गगन ।
नव मधु के फूलों की ज्वाला में वह दीपित,
रूप रंग शोभा सौरभ के अंग गुंजरित,
दीपित उसमें सूक्ष्म भुवन, युग स्वप्न मंजरित ।

जाग उठे ज्यों सुरगण महाउद्भव की ध्वनि सुन,
ध्यान मौन निज स्वप्न कक्ष में चौंक अचानक,
आंदोलित हो उठे सूक्ष्म भावों के आसन,
दीप्त प्रेरणाओं से स्पंदित कंपित अंतर,
गलित रश्मियाँ सी बहती ज्यों उर के भीतर ।
त्वरा, मणि आसन छोड़, समवेत देवगण
चकित दृष्टि से देख चतुर्दिक् आत्म मूढ़ हो
गुप्त मंत्रणा करते मिलकर, कौन पुरुष वह ?
विस्फारित दृग खोल रह गए, कौन पुरुष वह ?
भय विस्मय में डूब पूछते, कौन पुरुष वह ?

[दूर आँधी तूफ़ान के उठने का नाद]

एक दिन

कौन आ रहा वह भीषण सुंदर, भुवनों को
कंपती दुर्धर पदचापों से कंपित करता ?
झंझा सा जन मन में भैरव मर्मर रव भर
भू समुद्र को हिल्लोलित, भय मंथित करता ।
क्या यह महा प्रलय कि प्रभंजन महानाश का ?
या धरणी का रक्त प्यासा महाकाल या ?
दौड़ रहे उत्पात दशों, कंपित सा भुवन
निश्चय, यह नव कल्पान्त, यह महा युगान्तर ।
नाश सृजन आ रहा एक के भीषण रथ पर
शांति पुरुष यह क्रांति पुरुष यह नाश पुरुष यह !

युग दल

आओ है, आओ, अभिवादन, शत अभिवादन !

स्वर्णदूत

शांत हो गया क्षुद्र जग स्वागत नत होते !

[स्वर्णयुग के आगमन का स्वर]

दसों

कौन कौन तुम तप्त स्वर्ण से दारुण सुंदर,
धरा गर्भ के गुह्य तमस से प्रकट सूर्य से ?
मस्ती के तुरगों पर चढ़ ममर हर हर भर
जन मन को करते आदोलित, सिंधु उच्छ्वसित ?
जीवन क्रंदन में बज उठता नया गान अब
मन की मूर्छा में जग पड़ती नयी चेतना
प्राणों के अवचेतन तम में धँसी ज्योति नव
क्षुध स्नायुओं के दीपन में रजत शांति सी !
शून्य निराशा में आशा संशय में आस्था
अविनय में श्रद्धा सम्मान उपेक्षा पट में,
संघर्षों में जय संकल्प अहंता में अब
छिपा प्रलय में सृजन घोर तम में प्रकाश नव !
हाय कौन तुम विद्रोही नव के ईश्वर से !
उलट पलट कर दिया निखिल जीवन क्रम तुमने !

सौवर्ण

[आत्म विश्वास भरा सौम्य स्वर]

मैं हूँ वह सौवर्ण, लोक जीवन का प्रतिनिधि !
नव मानव मैं, नव जीवन गरिमा से मंडित
युग मानस का पद्म, खिला जो धरा पंक में,
जड़ चेतन जिसमें सजीव सौंदर्य संतुलित !

प्रथम एक अविभक्त सत्य मैं फिर जड़ चेतन !
मैं ही सत प्रकाश सूक्ष्म औ' स्थूल जगत के
सतरँग छायातप में विकसित ! सत्य अमर मैं,
जिसके अंतर में भविष्य के गत स्वर्णिम युग
नव जीवन की शोभा में सागर-से संचित
विश्व चेतना से मेरा अहरह अनुप्राणित !
मैं हूँ श्रद्धा का भविष्य, जो व्यक्त जगत के
काल ग्रसित खंडित मानों के भूत भविष्यत्
वर्तमान का अतिक्रम कर, उनमें प्रविष्ट हो,
विकसित करता अग जग को नव सीमाओं में !
मैं ही वह निरपेक्ष विश्व सापेक्षों में जो
अभिव्यक्त हो जग जीवन मन के मूल्यों में—
उनके परिवर्तनों में, उदय विकास, ह्रास में,
उनके भीतर स्थित, निरपेक्ष बना रहता नित !
क्या आश्चर्य कि तुम्हें कल्पनावत् लगता हूँ !

स्वदूती

बना सृष्टि यह, महत् कल्पना जन भविष्य की !

सौवर्ण

ऊपर मैं रत्नाभा सा छहरा देता मैं,
सृजन चेतना के प्रतीक जो सूक्ष्म अगोचर,
नीचे मानव जग में मूर्तित प्रिय जो सुन्दर
देवों का वर आत्मसात् विकसित होता जो !
तुम दीपक से भिन्न समझते ज्योति शिखा को ?
विस्मय करते क्यों आँधी तूफानों में
जीवित रहती है वह ? मैं तूफानों ही में
जलने वाला अमर ज्योति हूँ ! मैं रहस्य हूँ !
भंगुर मिट्टी के प्रभाव ही में पलता हूँ !
झंझा के पंखों पर चढ़ जीवन ज्वाला सा
मैं गँग गँग फिरता हूँ अंबर, सागर, कानन में !

मैं धा मानर मर श्रप ता शयराक ना
उम नाधन श्राया भू नीरन श्रीतन म
शाषण दुग भयाय न्य रा भुमि भार हर ।
शतिया र पतभ्हरों म भरी श्राया में
नर मधु का गनरित मरगिमा ताल पल्लवित ।
मम चतना भरना र श्मनय तभर रा
लार ततना म रग्न श्राया ह मृतिन ।
मह धरा जारा म नन र मन प्राणा र
रचि स्भार नरिया रर नर मयानित,
युग युग र मानर सत्य रा मर्मीरण रर
नर मानवता म रग्न आया ह नितरित ।
स्वप्न गवाक्षों र दापित श्रन मु काल क्षण
धरा नक्ष म रशा गर हा रह मर्मनित
युग युग स निर्द्रित चतना र मरशा रा
मैं जीरन मृना में रर्ने श्राया गफित ।

स्वर्दूत

श्रारर रा य यह इममें नन भारा श्रतहित ।

सौवण

श्राज धग नारन श्रचल म नयी प्ररणा,
श्राज जना र साथ प्राणप्रद सृजन शक्ति नव
श्रव न क्ना र रगम निकुजों म पल सकत
श्रगणित वक्षों म श्रव स्पदित नयी चतना ।
नव जीवन सौंदय उग रहा जन धरणी म
मनुष्यत्व की फसल उगलता हँसता भू रज
नव मूल्यों की स्वर्णिम मजरियों से भषित ।

[सवा रथ म प्रस्थान नव वसतागम का वान्ति मगीत]

स्वदूती

विस्मय स्तभित स लगते निष्प्रभ हो सुरगण
नवासप उद्वलित गोपन सभापण रत ।

एक देव

धरा गर्भ से प्रकट, धरा में समा गया, लो,
वह तेजोमय स्वर्ण पुरुष फिर, शत सूर्योज्वल,
स्वर्णिम पावक से दीपित कर देवों का मन !
बरस रहे शत निःस्वर निर्झर अधिमानस से
उज्ज्वल तप्त हिरण्य द्रवित, नव युग प्रभात में—
उतर रही हो स्वर्गंगा आलोक वारि स्मित,
स्वर्ण नूपुरों से मुखरित सुर बालाओं से—
जीवन शोभा से उर्वर करने जन भू को !

देवी

चलो, चलें हम धरा स्वर्ग में, जन मानव वन
छोड़ त्रिदिव की मानस रति प्रिय भोग भूमि को
प्रगति विमुख जो, चिर निष्क्रिय, वंचित विकास से !
मर्त्य लोक ही निश्चय भावी का नंदन वन !

[देवों का अवतरण सूचक वाद्य संगीत]

मर्त्यनी

स्वर्ण पृष्ठ खुल रहा लोक जीवन का भू पर,
जन मानवता प्राण प्रेरणा से हिल्लोलित !
नव जन ग्रामों, नव जन नगरों में सुख मुखरित
नव युग अरुणोदय हँसता नव आशा दीपित !
स्वर्ण घंटियाँ सी बज उठतीं स्वत अनिल में
मुग्ध क्षितिज वातायन लगते स्वप्न मर्मरित
स्वर्ग दूत सा उतर रहा नव युग प्रभात अब
शुभ्र लालिमा भर रश्मियों से विस्मित सा,
जन स्वप्नों से अन्तर पथ में अभिनंदित !
हर्ष मुखर खग विहग गा रहे शांति [illegible]
धरा गर्भित है स्वर्ग ! [illegible] !

द्रवित हो उठी गाय गानिमा अमवर नभ की
दग धरा मग्न शत रग-छायाओं म जैप।
निखिल विश्व आनन्द छद गा प्राण तरगित,
अगणित स्वर लय गगतिया म जीवन मुखरित।

स्वप्न दूत

दय दुग मिट गये दैन्य गय धूमिल पथत
घृणा द्वप स्पर्धा क भय सशय पीडन क
जन शोषण अन्याय, अनय से मुक्त धरा पर
एक छत्र अब शाति साम्य, स्वतन्त्र प्रतिष्ठित।
शुभ्र शांति ना सव श्रेष्ठ गति मानव मन की
निमर स्वर्णिम पखों में जन भू का जीवन
सृजन हर्ष स स्पदित, सतरग श्री शाभा म
विचरण करता बाधा बधन हीन विश्व म।
नव युग उत्सव मना रहे उल्लसित धरा जन
प्रीति सूत्र में गुथ मर्जरित तन मन लोचन
नव जगत म नव जीवन मधु सचय करने।

समवेत गीत

युग प्रभात नव युग वसत नव
जन भू का अभिनदन गायें।

कितने हृदयों क मृदु स्पदन
कितना के मधु हास अश्रुकण
कब से मध सुमनो में सचित
आओ इनके हार बनायें।

आकुल उच्छ्वासों का सौरभ
उत्सुक अपलक नयनों के नभ
इन नीरव मगलो म मुकित
स्मृतिया की माला पहनायें।

युग युग की वह मौन प्रतीक्षा
मम गुञ्जरित जीवन दीक्षा,
सफल आज, जन भू में अर्जित,
इन्हें स्नेह से हृदय लगायें!

ये प्रतीक जन हृदय मिलन के,
जन पूजन, जन आराधन के,
भावि युगों के इनमें विकसित,
इन फूलों को शीश चढ़ायें!



स्वप्न और सत्य

[आदर्श और वास्तविकता के बीच युग संघर्ष द्योतक काव्य रूपक]

कलाकार

दो मित्र

छाया चेतनाएँ

अँगड़ाई भरती हरी कलियाँ
मधु मधुप करते रँगरलियाँ,
किस पात्र में किसने माहुर
माणिक मदिरा ढाली !

[गान गाता हुआ]

कलाकार

पतझर आया, जग जीवन में पतझर आया
झर झर पड़ता युग युग का मुरझाया वैभव
मन की टूटी बाहर अनिल निकल आया हो !
भावों, तरु विचारों की नाड़ियाँ उभर कर
ठूँठी, शुष्क टहनियों सी छितरी पड़ती हैं !
प्राण प्रभंजन समुच्छ्वसित सत्कार झाड़ता,
सिहर सिहर उठता आंदोलित जन मन कानन
प्रलय गीत गा रही चूर्ण पसलियाँ जगत की
जीर्ण मान्यताएँ पीले पत्तों सी उड़ कर
धूलिम्लान हो रहा मौन मर्मर क्रंदन भर !
गिर गिर पड़ते नष्ट भ्रष्ट सुख नीड़ अरक्षित
स्वप्न हिमानी जड़ी हृदय की डाल रुपहली
निखर निखर पड़ती निर्जन में अश्रुपात कर !

[मित्रों का प्रवेश]

पहला मित्र

नमस्कार ! फिर रहा प्रकृति की छवि का चित्रण ?
तुम्हें धन्य है !

कलाकार

कहाँ छीन सकते हैं बच्चे !
माँ का आँचल ?

पहला मित्र

माँ का अंचल ! ठीक, अभी
वाँछित शिशु ही हो ! (हास्य)
निर्निमेष भावुक प्रभा से
मातृ प्रेयसी का प्रिय मुख देखा करते हो —
मुग्ध यत्न से जीवन से कर्तव्य विमुख हो !
इस प्रमाद के लिए कभी तुम जन समाज से
शापित होगे !

दूसरा मित्र

(चित्र का स्पर्श कर) कैसा मधुर मनोहर दृश्य है !
पतझर के सूखे पंजर में नव जीवन का
हृदय हो उठा हो स्पंदित नव भाव उन्मुखित !
टेढ़ी मेढ़ी रेखाओं की रंग पटी में
नव शोभा का क्षितिज झाँकता मर्मर कंपित !
छायातप कंप-कंप उठता मृदु तूलि स्पर्श से !
मुट्ठी भर रेखाओं में निस्तब्ध चितेरे की
आशाऽकांक्षा गूँज उठी हो, रंग ध्वनित हो !
नव भावों से आंदोलित ज्यों देह लता सी
मुग्ध नाचती झूम रही मधु बाहु पाश में !
रेखाएँ ज्यों लय की बहती धाराएँ हों !
कैसी प्रेरणा कुशल तूलि के संकोचन में
मूर्त हो उठी है अपार शोभा में अपलक !
मार्मिक कृति है !

कलाकार

(मन्द स्वर में) मातृ प्रकृति कैसी अद्भुत है !—
गहन अंधेरे के, घृणा बैर के, हास अश्रु के
छायातप में गुम्फित है जिसका अन्तस्तल !
[illegible] मन की प्रसव मुकुर जिसके आगे [illegible]
[illegible] मिलौना [illegible] है [illegible] !

कलाकार

नहीं जानता तर्कवाद, विज्ञान नहीं हूँ,
मन तो मेरा नहीं पहेली कभी बुझाता!
पर जो मन को प्यारा वो सुन्दर लगता है
उसमें रंग आँख जुगाऊँ? जो अंतर के
घटनाओं को प्रिय लगता है उसको निर्मम
तिरस्कार कर उसे भुलाऊँ? यह मनुष्य से
संभव है क्या? नहीं, बड़ी निर्दयता है यह!
मैं क्या करूँ? विवश हूँ मुझसे न हो सकेगा!
मन तो मेरे हाथ नहीं है तर्क बुद्धि से
न चल सकूँगा, मुझे भावना ही प्रिय है!
जो, अनजाने ही मन को मोहित कर लेता है,
चितवन को अनिमेष लूट लेता निज छवि में
रूप रश्मियों में उलझा पलकों का विस्मय,—
जो प्राणों को पागल कर बरबस भावों के
स्वप्न पाश में बाँध, हृदय तन्मय कर देता—
मैं उसको ही आँकूँगा निज रंग तूलि से,
वह चाहे कुछ भी हो मैं यह नहीं जानता!

पहला मित्र

क्या प्रलाप करते हो पागल प्रेमी का सा!
मानव जगत कहाँ सुंदर है प्रकृति जगत से,
क्योंकि अधिक विकसित है वह पुष्पों पशुओं से!
ऊर्ध्व रीढ़ पद दलित कर चुकी जड़ निसर्ग को,
शीश झुकाएगा वह पुनः प्रकृति के सम्मुख?—
जिस प्रकृति प्रभु मौन हृष्ट से पूँछ हिलाती
प्यार प्रणत रेंगा करती पैरों के नीचे!
फूलों का ज्ञान शिराओं से रहस्यमय
ज्ञानवाहिनी सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं मनुष्य की!
मानव जग में जनगण जीवन में प्रवेश कर
नयी प्रेरणा तुम्हें मिलेगी कला के लिए,

शक्ति स्फूर्ति आ जाएगी स्वर्णिम तूलों में!
मानव के मन को गढ़ना सर्वोच्च कला है!
जन से सहज सहानुभूति ही मनुज हृदय की
सार्थकता है, वही प्रेम की क्षमता भी है!
आओ, देखो आँख खोल कर मनुज जगत का—
कैसा हाहाकार छा रहा आज यहाँ है!

दूसरा मित्र

आँख मूँद कर सोचो, देखो मानव मन का
कैसा हाहाकार छा रहा आज यहाँ है!

पहला मित्र

शापित वैभवता की भूखी ज्वालाओं में
काँप रही है रुग्ण वास्तविकता जगती की!

दूसरा मित्र

भौतिकता में बुद्धि भ्रांत, जीवन तृष्णा से
पराभूत हो, भूल गया नर आत्म ज्ञान को!

पहला मित्र

एक ओर प्रासाद खड़े हैं स्वर्ग विचुम्बित
दूसरी ओर असंख्य घिनौनी झाड़ फूँस की
नंगी झोपड़ियाँ हैं, पशुओं के विवरों सी,—
घोर विषमता छाई है मानव जीवन में!

दूसरा मित्र

एक ओर आत्मा भ्रष्ट हो रहा मनुज का
चारों ओर दिग अपार अज्ञानता का तम
भाव अपरिचित गुत्थों में दृष्टि अटकती
और उलझते जाल हैं पगों पर में,—
घोर बर्बरता है प्राणि के भावों में ॥

पहला मित्र

आज पुनः संगठित हो रहे शोषित पीड़ित
युग युग के पंजर रो कर उठ धरा गर्भ से,—
क्रांति दौड़ती दावानल सी भूमि कंप सा
महत् वर्ग विस्फोट हो रहा मानव जग में !

दूसरा मित्र

आज पुनः संगठित हो रहा मानव का मन
नव प्रकाश में दीपित अंतश्चेतन गह्वर
नव्य चेतना से मधु झंकृत सूक्ष्म शिराएँ —
रूपांतर अब निकट महत् मानव भावों का !

पहला मित्र

लोक साम्य की बृहद् भावना से प्रेरित हो
सामूहिक निर्माण हेतु अब उत्सुक भू जन !

दूसरा मित्र

विशद विश्व मानवता के भावों से प्रेरित
आध्यात्मिक उन्नयन हेतु आतुर मानव मन !

[वाद विवाद सूचक ध्वनि संगीत प्रभाव]

कलाकार

ऊब गया मन घोर विरोधाभासों को सुन
चलती कल्पना दौड़ समांतर तथ्यों के संग !

[जम्हाई लेता है]

आऽऽह !

[बाहर से नारे लगाने की आवाज]

(नारे) *क्रांति की जय हो ! प्रजातंत्र की जय हो !*
लोकतंत्र की जय हो ! जन मंगल की जय हो !

पहला मित्र

सुनो, मधु यह जन समुद्र गजन भरता है
प्रतिध्वनित हो रहे मौन घन पर्वत कंदर
जाग रहे चिर निद्रित भू के निर्झर गह्वर,
लोकालय यह महत् प्रदर्शन लोक पर्व का।

[दूसरे मित्र से]

उठो मित्र, त्योहार मनाता जन मानवता,
चलो, सम्मिलित हों हम भी आनन्द पर्व में
रत्नाकर की पलकें टूट रहा निद्रा में,
उसको सोने दो अपने कल्पना नीड़ में
स्वप्नों का पंखियों के संग भावना मग्न हो।

दूसरा मित्र

चलता हूँ पर, लोक पर्व में न जा सकूँगा।
इन नारों में कहा तीव्र स्वर रंभा में
मेरे अंतर में उठता है। चिन्तन में जा
खोज करूँगा गहन मर्म जिज्ञासा का अब।

[दोनों मित्रों का प्रस्थान]

(नारे) जय राष्ट्र का जय हो। लोकतंत्र का जय हो।

[illegible]

[illegible] पड़ गयी दृष्टि व्यक्ति की उठ प्राण मेरा
[illegible] तरों के [illegible] [illegible] में,
[illegible] [illegible] प्रेमाप्लव [illegible] के [illegible]
प्राण शक्ति का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था।

[[illegible]]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible]

ना विराग पर म गभरत जिसर भूमित
नरण चिह्न भू पर पर ज्ञात गग प्रबद नन।
तर्क बुद्धि मतवादा स ना रहा पूर्ण है।
उसका शाभा कभी स्फुरित हा अंतनभ म
आलाकित कर नती मन निशिन सदा ना।
स्नेहमयी वह मृत्युमयी आनंदमयी वह,
करुणा कामल मा की ममता सी मगलमय
प्राति मधरिमा स भर श्रद्धा मान हृदय का
दीपित कर नती रहस्य मय महत ताप से —
सा सी भासा के दल खाल हगा क सम्मुख।

[अगनाई लकर]

आह! न जाने किन फूलों की मदिर गध पा
अलस-श्राति ज भा लती मधर अगा में!
चलात हा उठा मन,—थान्त विश्राम करूँगा,
स्वप्नों की परिया के छायाचल म छिपकर!

[तरन पर आ जाता ह]

स्वप्न दृश्य

एक

[मन मधुर वाद्य संगीत · कलाकार का भावाक्रांत मन स्वप्न-धाम अंतर्जगत के सूक्ष्म प्रकाश में विचरण करता है जिसे स्वर्ग कहते हैं]

[स्वर्ग चेतना का गीत]

स्वागत, अमरपुरी में आओ!
जागृत स्वप्नों से निर्मित है
तन्द्रालस में मत निलमाओ!

जागो, जागो, दिव्य पाथ हे
त्यागो भव भय, मुक्त गात हे
स्वर्ग शिखर यह शुभ प्रात है,
निर्भय, निश्चय, चरण बढ़ाओ!

यह भीतर का सूक्ष्म संगठन,
मन करता आया आरोहण
तुम जड़ नहीं, अनश्वर चेतन,
चेतो, मन की भ्रांति भगाओ!

महानन्द की उठती लहरें,
पुण्य यहाँ के अक्षय प्रहरी,
जन्म मरण की निद्रा गहरी
छोड़ो, नर नीरज पद पाओ!

क्षणिक अतिथि बन जो तुम आये
तन मन प्राणों में कुम्हलाये
तो परदा तुम्हें यदि भाये
भू पर फिर गिर ले जाओ!

[[illegible] आती है]

जो विराग पथ में गभरत निसर्ग धूमिल
चरण चिह्न भू पथ पर छोड़ गए प्रबुद्ध जन!
तर्क बुद्धि मतवादों से जो रहा पृथक है!
उसकी आभा प्रभा स्फुरित हो अंतर्नभ में
आलोकित कर रही स्वप्न विगलित सदा था!
स्वप्नमयी वह, सूक्ष्ममयी आनंदमयी वह
करुणा कोमल माँ की ममता सी मंगलमय
प्रीति मधुरिमा से भर श्रद्धा मान हृदय को
दीपित कर रही रहस्य गत सहज भाव से,—
सो मैं भावों के दल खोले हँसा के सम्मुख!

[जम्हाई लेकर]

आह! न जाने किन फूलों की मदिर गंध पी
अलस-श्रांति उभर आती मधुर अंगों में!
बलात हो उठा मन — थोड़ा विश्राम करूँगा
स्वप्नों की परियों के छायांचल में छिपकर!

[तरु पर सो जाता है]

स्वप्न दृश्य

एक

[मन मनुज की अंतर्चेतना ... का भावात्मक मन स्वप्नावस्था में अन्तर्जगत के सूक्ष्म प्रसारों में विचरण करता है जिसे स्वप्न कहते हैं]

[स्वर्ग चेतना का गान]

स्वागत, अमरपुरी में आओ!
जाग्रत स्वप्नों से निर्मित है
तन्द्रालस में मन विरमाओ!

जागो, जागो, दिव्य प्रात है,
त्यागो भव भय, मुक्त गात है
स्वर्ग शिखर यह शुभ्र शांत है,
निर्भय, निश्चय, चरण बढ़ाओ!

यह अंतर का सूक्ष्म संगठन,
मन करता छाया आरोहण
तुम जड़ नहीं, अनश्वर चेतन,
चेतो, मन की भीति भगाओ!

महानंद की उठती लहरें,
पुण्य यहाँ के अक्षय प्रहरी,
जन्म मरण की निद्रा गहरी
छोड़ो, नव जीवन पथ पाओ!

क्षणिक अतिथि हो जो तुम आये
तो मत प्राणों में कुम्हलाये,
तो दरशन तुम्हें यदि भाये
? पर स्वर्गशिखर से जाओ!

[[illegible]]

कर्णधार

[आगे बढ़ता हुआ]

कैसी स्वर-संगति है इस सुंदर प्रदेश में,
स्वर्ग लोक है यह क्या, अंतर्मन का दर्पण?
जहाँ मौन संगीत प्रवाहित होता रहता
सूक्ष्म भावना अप्सरियों के पदक्षेप से!
निश्चय, यह मानव जग का प्रतिमान रूप है—
विगत युगों का भाव विभव है जिसमें संचित!
ये कैसी छायाएँ विचर रहीं अनंत में
दिव्य चेतनाओं सी स्वप्नों के पंखों पर!
ये कैसे विच्छिन्न हुईं जीवन पदार्थ से!
आत्माएँ हैं ये क्या जो तन में बँधन का
मँडराता उड़ चिद् नभ में निःशब्द व्यथा सी?
अथवा ये चिर रहस शक्तियाँ, मनुज नियति का
संचालित करता जो छिप कर स्वदूता सा?
इन्हें कौन परिचालित करता?—गूढ़ प्रश्न है!
संभव, ये अंतर प्रकाश की छायाएँ हों
धरती की रज बाह्य आवरण भर है जिनकी!
जीवन का बहुमुखी सत्य है एक, अखंडित,
अध ऊर्ध्व सोपान श्रेणियों में वह छहरा,
एक दूसरे पर निर्भर है जिनकी सत्ता—
एकांगी अभिव्यक्ति नहीं श्रेयस्कर इनकी!
मनुज चेतना भटक गयी क्यों मध्य युगों से
भाव लोक में? ऊर्ध्व पथ क्या पकड़ा उसने!
स्वप्न लोक में शून्य मुक्ति का अनुभव करने?
मुक्ति रिक्त कल्पना नहीं, वास्तविक सत्य है!
उसे प्रतिष्ठित करना होगा जन समाज में
महत् वास्तविकता में परिणत कर जीवन को!
सूक्ष्म स्वर्ग को भी फिर विकसित होना होगा
जन धरणी पर उतर, मूर्त अवयव धारण कर,—
वह यथार्थता में बंधन का रुका हुआ है!

[वाद्य संगीत के साथ गंभीर मधुर प्रार्थना गान]

यह कैसा उन्मुक्त प्रार्थना गान बह रहा
फिर श्रद्धा विश्वास हो उठे अंतर्मुखरित,
गुह्य अर्थ मन्त्रों के स्वत स्फुरित हो उर में
उद्भासित हो उठे तडिल्लतिका से दीपित!
यह किन आत्माओं का करुणा-नत प्रकाश है?
वरदहस्त की छाया कौन किये ये भू पर?
दिव्य महापुरुषों से लगते ये पृथ्वी के!
स्वप्न देखता हूँ मैं क्या? या अति जाग्रत् हूँ!
सुनूँ, धरा के स्वर्गिक प्रतिनिधि क्या कहते हैं?

[छायाओं का सम्बोधन कर]

अभिवादन करता हूँ, श्रद्धानत मस्तक मैं
जन-भू के स्वप्नों से पीड़ित,—रंग तूलि सा
रँगता जो नित धरा चेतना के क्षत पदतल,
उर की करुणा ममता शोभा सुषमा से भर,—
लोक कला का महदाकांक्षी, नव दृष्टा मैं
महत् प्रेरणा का अभिलाषी, सत्य चार मैं!

प्रथम छाया

मर्त्य जीव हो नहीं, अमरताकांक्षी भी तुम!
हम भी जन भू के अभिभावक, जन सेवक हैं—
आत्म मुक्ति पथ त्याग लोक जीवन वेदी पर
हमने पार्थिव स्वार्थों का बलिदान किया नित!
अब भी हम यत्नशील हैं स्वर्ग लोक में
भू जीवन के श्रेय के लिए—आत्म तेज से
मार्ग प्रकाशित कर जन गण का ध्रुव तारकवत्!

कलाकार

मेरा भी भू पथ प्रकाशित करें सदा तप!

प्रथम छाया

सफल मनोरथ हो तुम वत्स, बनो नारद की
मृत नास्तिकता नष्ट कर उस जन जीवन
नित नव साधकता दे, वह नारद तृष्णा का
मानव अन्तर के प्रकाश में रूपान्तर कर
उसे मनुज के योग्य बनाये,—घृणा द्वेष का
शमित द्रवित कर। मानव ईश्वर का प्रतिनिधि है।
लोकोत्तर जीवन विकास की क्षेत्र है धरा,
मानव का जीवन आत्मोन्नति का प्रांगण है।

दूसरी छाया

पुण्य कर्म रत रहो पाप का पथ मत रोका
प्रभु मंगल सज्जन को करते सम ज्योति दान नित।
एक सनातन प्रेम व्याप्त सब चराचर में,
वही प्रेम ईश्वर जिसका मन्दिर मानव उर।
तुम पवित्र यदि रहो तुम्हें फिर किसका क्या भय?
सदाचार श्रेयस्कर भू पर स्वर्ग लाकर से।
कर्मे मिलते फल उन्हें यथा जीवन जिनका,
उनका पालन सब को ही करना है जग में।
क्षमा दान जो करो तुम्हें प्रभु क्षमा करेंगे—
प्रेम क्षमा, जन दया विनय, सोपान स्वर्ग के।
धन्य विनम्र निरीह उन्हें स्वधाम मिलेगा
धन्य सत्य पथ चारी, होंगे पूर्णकाम वे।
धन्य पवित्र हृदय, ईश्वर का मुख देखेंगे
धन्य शान्ति कामी, प्रभु के शिशु कहलाएँगे।
धन्य न्याय हित व्यथित स्वर्ग में राज्य करेंगे।
तुम धरती के लवण, विश्व भर के प्रकाश हो,
ईश्वरीय महिमा का भू पर करो प्रकाशित।

तीसरी छाया

रोग शोक औ' जरा मृत्यु पीड़ित जग जीवन
सुख की तृष्णा—मार शत्रु दुर्जेय मनुज का।

राग द्वेष पर मिथ्या का पर तन भयंकर
अंधकार अज्ञान जनित छाया तन भू पर।
आत्म शुद्धि का अनुपम अग्नि पथ है दुर्गम,
सद्धर्म का द्वार दिया स्थापित बातों में।
मूल अविद्या है प्रकार जिसका तृष्णा का
नाम रूपमय षडायतन, भव, जन्म मरण है।
कारण, दुःख निदान निरोध समझ कर मानव
जन मंगल का मार्ग गह — मध्यमा प्रतिपदा।
क्षण भंगुर यह जगत, नित्य चैतन्य न आत्मा
निश्चित पदार्थ अनित्य कर्म जग-जीवन-बंधन —
तृष्णा दुःख का कारण, उसका पूर्ण त्याग कर
ग्रहण करें जनगण सदा पथ, बोध दया मन।
बुद्ध, धम्म औ संघ शरण निर्वाण प्राप्ति पथ।

चौथी छाया

इधर धवल पर, असीम दया सागर था,
उधर सब संकट समान, जातियाँ सब है।
मृत्यु अन्तर मृत्युभीत हर परिनिर्वाण में
भूतल पर विश्राम, धर्म का मार्गदर्शक हर।
विनय दान, प्रार्थना — सबका जन जन का
इतिहास का मार्ग चाहता मैं पूरा पर।

पाँचवीं छाया

अभी लौट कर आया हूँ पावन यात्रा से
अभी जहाँ भर गया मन के नाम भी भर,
जो कि लोक सदा के फिर उपकार किए हैं।
महापुरुष जो शान्ति सिद्ध जागी के पथ पर
रह गए हैं मैं भावातुर होता हूँ।
जग अनुसरण किया। बहुत आदर्शों का विधि
शांति पर चित करे समीप। इस जग का,

मैंने विविध प्रयोग किये जन के जीवन में —
स्वत: सत्य को पाता रहा मैं क्रम क्रम से !
ईश्वर सत्य न कहकर कहूँ सत्य ईश्वर है ?
सतत असत् पर सत् की जड़ तम पर प्रकाश की,
तथा मृत्यु पर जीवन की जय होती जग में !
नियम नियामक दोनों एक तथा अभिन्न हैं।
भू जीवन में और नये के प्रति आग्रह है !
सभी नया चाहिए मनुज को, जादू से ज्यों
सभी पुराना क्षण में नया बदल जाएगा !
शाश्वत और चिरंतन सत्य नहीं हो कुछ भी,
अभिव्यक्ति पाता जो जीवन व्यापारों में
पुन: पुरातन को नूतन में समावेश कर !
सूर्य तले, कहते हैं कुछ भी नया नहीं है,
घटनाओं को छोड़ नित्य अभिनव पुराण जो !
खादी सूतों के सात्विक ताने बाने भर
जन जीवन पट बुना सरल लोकोज्ज्वल मैंने
जनगण के श्रम बल के मूल्यों पर आधारित,
हिंसा शोषण के धब्बों से उसे बचा कर
औ' असत्य के कल्मष से रक्षा कर उसकी !
अन्यायी अत्याचारी के प्रति नृशंस के
मन नम्र बनाने के सिखला प्रयोग नव,
युद्ध जर्जरित जग को दिखा अहिंसा का पथ,
भीरु हृदय में मानव गौरव पुन जगाया,—
आत्म शक्ति से रोक पाशविक हिंसा का बल !

कलाकार

अब भी तन मन सिहर कर उठता सभ्रम से,
पावन स्मृति के मलय स्पर्श से पुलकाकुल हो
एक नया चेतनोल्लास उठ धरा गर्भ से
चलता नभ की ओर, स्वर्ग मुख दीपित करने !
शत प्रणाम जन युग की इस आराध्य ज्योति को !

पाँचवीं छाया

जय मंगल हो! लोक कर्म रत रहा निरंतर
सेवा करना ही प्रणाम करना है मुझको!

['रघुपति राघव राजाराम' की धुन धीरे धीरे 'श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन' के करुण कंठ स्वर में डूब जाती है]

कलाकार

ओ, यह क्या स्यात सुनाई तुलसी के स्वर हैं?

एक स्वर

मैं पहिले ही परम मंत्र दे चुका मित्र को!
राम चरण अवलंब बिना परमार्थ सिद्धि की
पुण्याशा बारिद की गिरती बूँद पकड़ कर
नभ में उड़ने की अभिलाषा सी मिथ्या है!
सियाराम मय जान समस्त जगत को निश्चित
बार-बार करता प्रणाम युग पाणि जोड़ नित!

दूसरा स्वर

परम लोकप्रिय यह तुलसी ही की वाणी है!

एक स्वर

मुझे लोकप्रिय लगते हैं सूरदास जी!
सूर सूर हैं! जिनका मधुर कृष्ण का शैशव
अब भी घुटनों बल चलता इस भारत भूमि के
घर घर में, प्रांगण आँगन पर, भुवन मोहिनी
अपनी लीला से विमुग्ध कर जन जन का मन!
अब भी ब्रज निकुंजों में वंशी ध्वनि बन कर
जनात्मा में पुलकित करता गोपी भू का मन,
यमुना तट नित मुखरित रहता रास लास से!
दुर्लभ अन्तर्मुखी दृष्टि है! स्वर राम की

सदा रूपमय रहे दर्शाने! मुझको उनका
धनुर्बाणधर रूप सदैव प्रणम्य रहा है!

पहला स्वर

यह क्या मीरा? मौन, नृत्य में समाधिस्थ सी!

दूसरा स्वर

नृत्य निरत गिरिधर में लीन, भाव-रस डूबी,
प्रेम दिवानी मीरा केवल तन्मयता है!
निरन्तर नूपुर ध्वनि से ही उसकी सत्ता का
मर्म मधुर आभास रसज्ञ को मिलता सतत!

तीसरा स्वर

ठीक बात है मस्त हुआ मन तब क्यों बोले!

एक स्वर

शब्द अनाहद के कबीर यह, अन्तर प्रेम का
गुड़ खाकर, गूँगे-से सदा रहे मुसकाते!

दूसरा स्वर

सूक्ष्म सुषुम्ना के तारों से झीनी झीनी
बिनी चेतना सुघर चदरिया स्वच्छ आपने
कलुष चिह्न से मुक्त धन्य हैं आप, कि जिसने
घूँघट का पट खोल सत्य के मुख को देखा
सदगुरु से चूनर रँगवा ज्यों की त्यों रख दी,—
अमर रहे साजन की प्रिय शृंगार आपका!

चौथा स्वर

मुझे आपकी अमर साखियाँ सदा प्रिय रहीं,
चमत्कारिणी वाक्य दृष्टि, मार्मिक रहस्यमय,—
उलटबाँसियों का क्या कहना! अद्भुत, अद्भुत!
नदी नाव के नाव समाती रहती प्रतिपल!

मध मंद्र क्या ये रवीन्द्र के मादक स्वर हैं !

चौथा स्वर

अमरों का है प्रिय शस्य स्मित स्वर्ण धरित्री,
पर भारत के अकर्मण्य जन मुग्ध अतीत का
देखा करते सदा विगत गौरव स्वप्नों में
खोए, निज दायित्वों के प्रति सोए रहते !
सामाजिक चेतना न अब भी जाग्रत उनमें !
नव राष्ट्र का भार वहन करने में अक्षम,
जाति पातियों, कुल परिवारों में विभक्त वे,
रूढ़ि रीतियों से शासित, मत भेद प्रताड़ित !
मैंने निज अंतर की स्वर्णिम झंकारों में
भू भागों की संस्कृतियों का किया समन्वय,
विश्वनाद स्थापित कर नंदित भू प्रांगण में,—
भारत की आत्मा को पश्चिम के जीवन की
नव गौरव-गरिमा से फिर से आभूषित कर !
भारत उर के भावों को पहिनाए मैंने
स्वर्ण रजत परिधान स्वप्नस्मित छायातप के
उषा ज्योत्स्ना की छाया में भू जीवन के
गातों को पट बुन स्वप्निल सौन्दर्य बोध से !—
श्री शोभा गरिमा से मंडित हो जन धरणी,
महत् ज्ञान विज्ञान समन्वित हो नव जीवन,
यही मात्र संदेश विश्व जन के प्रति भेजा !
युग प्रबुद्ध हो, आलोकित हो सारा भू घर,
यही प्रगति का, आत्मोन्नति का पुण्य द्वार है !

[शान्ति मूर्ति [illegible] [illegible]]

कलाकार

[अर्ध जाग्रतावस्था में]

धन्य भाग्य है! सफल हो गया मानव जीवन,
आज महापुरुषों का क्षण सामीप्य मिल सका,
और महाकवियों का दर्शन लाभ हो सका!
सभी महाकवियों की वाणी जन मंगल की
महत् भावनाओं से प्रेरित रही निरंतर!
सभी श्रेष्ठ धर्मों का अभिमत एक रहा है,—
ईश्वर पर विश्वास, सत्य आचरण धरा पर!
सभी महापुरुषों के लक्षण एक रहे हैं—
आत्मत्याग, जन सेवा, दया, विनय, चरित्रबल!
भू की भिन्न परिस्थितियों को भिन्न रूप से
संयोजित नित किया स्वर्ग की महत् दया ने,
मूर्तिमान हो युग युग में बहु सत्पुरुषों में!
सभी लोक पुरुषों की वाणी सत्य पूत है,
सभी दिव्य द्रष्टा, जन भू के अभिभावक हैं!
पर, मानव की नियति हाय, सचमुच निर्मम है!
सद् वचनों के लिए बधिर हैं हृदय के श्रवण,
मनोभूमि बंध्या है उच्च विचारों के प्रति!
दिव्य प्रेरणाओं से विमुख मनुष्य चेतना!
सत्य बीज बन प्राणों के रस से सिंचित हो
क्यों न प्रवाहित हो उठते जीवन गरिमा में?
कहाँ, कौन सी त्रुटि है? कैसी परवशता है!
आह, काँप उठता मन मानव की दुर्बलता से!
ऊपर से आकर प्रकाश बन जाता तम में
अंधकार का और अँधेरा बना धरा पर!
दुःस्वप्नों से आकुल हो उठता है अंतर,
रौंद रहा है कोई उर को, विश्वासों के
शिखर बिखरते जाते खिसक रही मन की भू,
ज्यों अंतर्मन का विधान हो चूर्ण हो रहा,—
घन कुहास से आवृत है मानव आत्मा!!

[स्वप्न धान्य वाद्य सगीत [illegible] कलाकार की आत्मा अनन्त
उच्च तथा सूक्ष्म प्रभाग में विचरण करता है]

*अहह, क्या सूक्ष्म अनेकों स्तर हैं स्वर्गलोक के ?
कैसा सम्मोहन है सद्य स्फुट वर्णों का !
यह प्राणों का हरित स्वर्ग सा लगता सुंदर,
जीवन की कामना जहाँ हिल्लोलित अहरह
शस्य राशि सी श्यामल, शत वर्णों में मुकुलित,
इंद्रिय भृंगों से गुंजित, मधु गंधामोदित !
मदिरा की सरिताएँ बहतीं ! यौवन उन्मद
अप्सरियों की नूपुर ध्वनि मथित करती मन,—
अधखिली कलियों सी कोमल देह लताएँ
अंग भंगिमा भर, नयनों को करतीं अपलक !*

[भाव परिवर्तन सूचक वाद्य सगीत]

*यह भावों का स्वर्ग लोक है मनो भूमि पर,
भूल रहा जो संयम तप की सुरा डोरों में !
यहाँ व्याप्त चिन्मय प्रकाश नीरव नीलाञ्चल,
मर्यादा में बँधी क्यारियाँ,—भाव राशि के
मुकुल स्वप्न-स्मित, पक्व पुण्य फल, आदर्शों की
लतिकाएँ लटकीं पात्रों से विनयानत हो !
सूक्ष्म वायु मंडल में व्यापकता है निर्मल
मान प्रेरणा की सुगंध से समुच्छ्वसित जो !
श्रद्धा औ' विश्वास तैरते हंस मिथुन-से
उच्च विचारों के प्रशान्त नभ में [illegible],
अतल नाभि उर सरसी [illegible] प्रीति तरंगित !*

[भाव परिवर्तन सूचक [illegible]]

*आत्मशुद्धि के नियमों का चिंतन [illegible]
और [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] जाति गत
[illegible] [illegible] पर, [illegible] से [illegible],
जहाँ [illegible] का [illegible] [illegible] है !*

मुक्ति दीप टिमटिमा रहा फीका प्रकाश दे,
संध्या के झुटपुट सा पीलातप निराश कर,—
आत्माएँ उड़ती जुगनू सी स्वयं प्रकाशित !

[पुनः भाव परिवर्तन सूचक वाद्य संगीत]

अंधतमसी लघु स्वर्ग संप्रदायों में सीमित
लटके हैं अगणित त्रिशंकु से, जड़मत पामर,
कट्टरपंथी आचारों के झींगुर झन झन
जहाँ रेंगते, दारुण धर्मोन्माद जगा कर !
जहाँ रूढ़ि जर्जर आस्था के झंखाड़ों पर
क्षुद्र अहंता के दिनाथ हैं नीड़ बसाए
मंद प्रभा में जो प्रकाश की छाया भर है !
आदर्शों के उच्च स्वर्ग सकाश क्षीण हो,
निकल गए जाने क्यों बहु उपशाखाओं में,
शुष्क कर्मकांडों में, जड़ विधियों, नियमों में !

[वाद्य संगीत के साथ दूर से आते गाता के स्वर जिनमें कलाकार को अपने मन के भावों की प्रतिध्वनि मिलती है]

महागान

यह क्या मन के रीते सपने !
कहाँ स्वर्ग सुख शांति, कहाँ रे
धरती के दुख भरे कलपने !

सपने भी तो कब के बीते
मीठे सुख क्षण लगते तीते,
धर्म नीति आदर्श सुनहले
काम न आते लगते अपने !

यह छायाओं का अंतर्मन
कभी रहा जो जाग्रत चेतन,
अब भी निभृत मधु स्मृतियों के
स्वप्नों से दृग लगते झँपने !

एक वृत्त रे हुआ समापन,
स्वर्ग न रहता कभी चिरंतन,
नव जागरण का नव रण अब
नव मन्त्र के मनके जपन!

लौट न आ सकते बीते क्षण
उन्हें न दो अब व्यर्थ निमंत्रण,
जन मन प्रांगण आज लगा गिर
अश्रुत पद चापों से कंपन!

कलाकार

[चिन्तातुर स्वर में]

कहाँ हाय, मैं भटक गया हूँ, किन लोकों में,
दुःस्वप्नों से पीड़ित क्यों हो उठता अंतर?
क्यों विभक्त कर दिया सत्य को मानव उर ने,
मानव मन की सीमा ही क्या इसका कारण?—
खंड खंड कर करता जो नित पूर्ण का ग्रहण!
जीवन, मन, चेतना सभी तो एक सत्य है
स्वर्ग धरा, जड़ चेतन, एक अभेद्य पूर्ण हैं!

[बीच के वातावरण में उतर अवरोह जनित कटु कंपन का कुंठित आक्रन्द सुनाई पड़ता है]

ये कैसी चीत्कारें उठतीं अतलातल से?
घोर तिमिर का बादल घेर रहा हो मन को!
कहाँ गिर रहा हूँ मैं? ये क्या नरक लोक हैं?
नीचे उतर हृदय घुलता जाता विषाद में,
अंधकार में आ गया हाय, कैसे स्वर हैं?

[[illegible] कलाकार [illegible]]

स्वप्न दृश्य

[२]

[कलाकार को दुःस्वप्न ग्रस्त अंतर अवचेतन के छायाकार पूर्ण लोकों में भटकता है। सुदूर से वाद्य व संगीत के स्वर उभर कानों में टकराते हैं]

[छायामय चेतना का गान]

अंधकार भी तो प्रकाश है !
पलकों में रे लवण अश्रु कण
अधरों पर क्षण मधुर हास है !

नयनों को प्रिय नींद घनेरी
जीवन तृष्णा देती फेरी,
मोह निशा की अचल छाया
मनुज ध्येय इंद्रिय विलास है !

वृथा आयु की अवधि गँवाई
मन की टीस नहीं मिट पाई,
चार दिवस की मधुर चाँदनी
रैन अँधेरी फिर उदास है !

विकसित, पशु ही निश्चय मानव
कभी देव नहीं, फिर वह दानव
ह्रास सतत होता जीवन में,
कहने को होता विकास है !

जो जैसा वह वैसा रहेगा
बहता पानी सदा बहेगा,
बड़े बड़े मुनि हार गए रे
मनुज प्रकृति का क्रीत दास है !

लिखा करम का नहीं टलेगा
अपना वश कुछ नहीं चलेगा,
कभी मंद तो कभी तेज है
मन की गति से बँधी साँस है !

यहाँ कौन, कब किसका सहचर
अपने सब, सबका है ईश्वर,
हानि लाभ सुख दुख की दुनिया
कभी दूर तो कभी पास है !

कलाकार

[मनस्थ सूत्र सा]

अंधकार ! यह कैसे हो सकता प्रकाश सा
अंधकार भी क्या प्रकाश की एक शक्ति है ?
या प्रकाश ही अंधकार की एक शक्ति हो ?
यह पहेली है ! उफ़, मैं क्या सोच रहा हूँ !
कैसी दूषित वायु यहाँ है भीति से भरी !
कहाँ आ गया मैं, किस दृष्टि विहीन लोक में !
जहाँ ह्रास युग का विषण्ण तम छाया निष्क्रिय,
घोर हृदय कार्पण्य भरा अनुदार दैन्य सा !
यह कैसी स्वार्थों की अँधियारी नगरी है
जिससे रही अपरिचित मेरी प्रखर चेतना !
भग्न भित्तियों में सीमित है इसका प्रांगण
जिनमें घिर घरौंदे लगते तुच्छ घिनौने !
उफ़, सने आलस प्रमाद में मग्न लोग ये,
पग हिलाना ही हो ध्येय जिनका जाना था !
मुँह मुँह में बैठे, गुप पर-निन्दा में रत
एक दूसरे के अहित के हित नित तत्पर,
राग द्वेष से जर्जर, कातरों से कायर,

अहम्मन्य, अभिमानी, स्पर्धा-द्वेष-पीड़ित,—
हठी, कुटिल-मति, मदभार से भर, निर्मम,
पर द्रोही, प्रतिशोध क्षुधित, निज के पीड़क,
कलह विवाद विनोदी घोर विषमता प्रेमी
निरुद्यमी, निःसत्व, निरुत्साही, निराश मन,
रोग शोक, दारिद्र्य दैन्य के जीवित पंजर
निखिल क्षुद्रताओं के जीवन मृत प्रतीक से !!
सूख गया प्रेरणा शक्ति का स्रोत हृदय में,
केवल गत संस्कारों पर जीवित इनके शव,
रेंग रहे जो भाग्य भरोसे भग्न राह पर !
इसीलिए ये रत स्वार्थ के पंक फँसा
लूटा करते एक दूसरे का जीवन-श्रम,
जाति पाँतियों में बहु खंडित, चिपके रहते
पथराए से रूढ़ि रीतिगत अभ्यासों से !
क्षुद्र सम्प्रदायों की सीमा अतिक्रम कर ये
निर्मित कर पाते न महत् सामाजिक जीवन !
तुच्छ मोह ममता में डूबे परम्परागत
कठपुतली से नाच रहे विधि लिपि पर निर्भर !

[वरुण वाणिश समाप्त]

हाय, कौन जीवन नंदिनी सिसकती है वह ?
यह क्या अबला ? छाया सी लिपटी पग से !
छिन्न लता सी कौन अधमरी वह ? क्या विधवा ?
कौन माँगते गा गा कर ये ? क्या अनाथ शिशु ?
आह, कैसी जीवन विभीषिका बन धरणी पर
जो मानव को वंचित रखती मनुष्यत्व से !!
कौन लोग ये ? राग द्वेष कटु कलह क्रोध के
मूर्तिमान कुत्सित प्रतीक से ? निम्न शक्तियों के
अमानुषी प्रतिनिधियों से लगते हैं जो !

[भाव परिवर्तन चातक शान्ति भगान]

ये क्या संस्कृति पीठ, कला साहित्य द्वार हैं ?
क्षुद्र मतों में, कलुषित गुटों में ईर्ष्या-खंडित !
ह्रास युगीन अहंतात्मा के मन संगठन,
व्यापक न स्वार्थ, सर्पों से अनुप्राणित !
सब बंध, प्रच्छन्न रूप से, व्यक्ति यहाँ पर
पर-परिभव हित तत्पर रहते, स्पर्धा पीड़ित !
जीवन कुंठा जहाँ अनुगमन अट्टहास नत
विस्मय स्तंभित कर देता क्षण मूढ़ अतिथि को !
और सृजन प्रेरणा व्यक्तिगत स्तुति निंदा पर
निर्भर रहती, रिक्त शिल्प सौष्ठव में मंडित !
यहाँ महत् निर्माण न संभव भाव सृष्टि का,
हा ! संगठित प्रहार सुलभ हैं सहधर्मी पर !
बुद्धि जीवियों का आहत अभिमान प्रदर्शन
यहाँ मात्र वाणी की सेना, कलाकारिता !

[भाव चातक गभीर शान्ति उगान]

क्या मनोविकार मात्र बन गई चेतना
सत्ता में हो लिप्त, भविता में हो गुंफित !
सामाजिक सन्तुलन खो गया क्या जीवन का ?
किन दोषों से प्राणों का संयमन नष्ट हो
विष बन फैल गया जन के नैतिक विधान में ?
किस प्रकार खोखला हो गया निर्मित आत्मबल,
क्यों चरित्र की अन्त संगति चूर्ण हो गई ?
युग युग से संगठित मानमय चेतनाधार
हाय, खो गया महानाश के अन्धकार में !!
ये साधारण व्यक्ति यहाँ मन के निराश्रित
कुंठित विचारों की छाया है—जीवन शापित !!
नहीं, यह दारुण स्वप्न न जीवन पर टूटेगा,
चिन्तन के मन्दिर मन में उठ सदा सा
निराकार आकांक्षा देगा। इसे सा

कहीं खुला आकाश नहीं, जो स्वच्छ वायु में
सास ले सके मन क्षण भर अह, छूट नरक से !

[नराश्यपूर्ण करुण वाद्य संगीत जो धीरे धीरे लोक जागरण के उत्सव संगीत में परिणत होकर द्रुत से द्रुततर होता जाता है। कलाकार की पलकों पर दूसरा स्वप्न चित्र उतरता है सुदूर से वाद्ित संगीत के स्वर आते हैं।]

जन गीत

जीवन में फिर नया विहान हो
एक प्राण, एक कंठ गान हो !

बीत अब रही विषाद की निशा,
दीखने लगी प्रयाण की दिशा,
गगन चूमता अभय निशान हो !

हम विभिन्न हो गये विनाश में,
हम अभिन्न हो रहे विकास में,
एक जय प्रयं अब समान हो !

क्षुद्र स्वार्थ त्याग नाद से जगें,
लोक कर्म में महान सब लगें !
रक्त में उफान हो, उठान हो !

शापित कोई कहीं न जन रहे,
पीड़न अन्याय अब न मन सहे
जीवन शिल्पी प्रथम, प्रधान हो !

मुक्त व्यक्ति, संगठित समाज हो,
गुण ही जन मन किरीट ताज हो,
नव युग का अब नया विधान हो !

कलाकार

आज व्यक्ति संघर्ष लोक जागरण बन रहा
धीरे निर्मम स्वार्थों की शृंखला तोड़ कर।
छिन्न माया जल से युग जीवन अंधकार फिर
निहँस उठा मानव उज्ज्वल मंगल प्रभात में।
निश्चय ही वह अंधकार था नहीं अकेला,
अलसाया जीवन प्रकाश था, मानव मन की
अंध वीथियों, रुद्ध घाटियों में बंदी हो
म्लान पड़ गया था जो छाया सा कुम्हला कर।
चेतन से जड़ को देखें, जड़ से चेतन को
दोनों का निष्कर्ष एक ही होता निश्चय।
उद्वेलित हो उठा आज स्तंभित जन सागर
प्राणों का नव ज्वार उमड़ता उसके उर में,
मज्जित कर देगा वह भू तट, युग प्लावन में
बाधाओं को लांघ, रहा अवसाद युगों का!
नवल प्रेरणा के स्पर्शों से पुलकित जन मन,
आंदोलित हो उठा विविध शाखाओं का जग,
नव वसंत की जीवन शोभा में दिगंत को
मधु प्लावित कर देगा वह, नव गंध मंजरित।
ओ, महान् जागरण, युगों से लोक अभीप्सित
भू पलकों पर मूर्त हो रहा स्वप्न सत्य सा,
जगती के वैषम्य-विरोधों का, कल्मष का,
मिटा सदा को धरा वक्ष के वैरूप्यों का!
नव प्राण हो रही धरा, युग युग से रौंदित,
नव लक्ष्य को वह सहसा पग फेरि मुक्त हो,
जन भू में स्वर संगति भरते पद चापों से।
कौन दिशा वह, जिधर बढ़ रहा जन-भू-जीवन,
मत्त, स्नात, गर्वित समुद्र सा हिल्लोलित हो?
कौन प्रेरणा उसे सींचती जिस नव पथ पर?
क्या वह इच्छित प्रदेश? नव स्वर्ग लोक वह?
क्या उसका आदर्श रूप? वह धरा चेतना

[प्राणोन्मादक वादित्र संगीत]

रूढ़िबद्ध, कुंठित, कुत्सित संस्कार युगों के
उच्छेदित हो जाएँगे मानव अंतर से ?
विस्तृत उपचेतन गह्वर, व्यापक मन क्षितिज,
विकसित हो जाएगा जन जीवन संवेदन ?
घृणित क्षुद्रताएँ मिट जाएँगी मनुष्य की
दैन्य अविद्या तमस निरस्त नये प्रकाश से ?
स्वार्थ लाभ कटु स्पर्धा घुल जाएगी मन की ?
रूपांतर हो जाएगा मानव स्वभाव का ?
व्यक्ति समाज परस्पर घुल मिल जाएँगे तब
भर जाएगा अंतराल दोनों का गहरा ?
चिंताओं से मुक्त मनुज आत्मोन्नति में रत
संस्कृति का नव स्वर्ग बसाएगा धरणी पर,
आध्यात्मिक सोपानों पर आरोहण कर नव ?

[आनन्द कल्पना मग्न वादित्र संगीत सहसा रण वाद्यों के निनाद तथा विप्लव के कोलाहल में डूब जाता है]

[स्वप्न में चौंककर]

अह, यह कैसी दुमुख रण भेरी बजती है,
आहत कर दिङ् मंडल को दारुण गर्जन से !
कौन शक्तियाँ कार्य कर रहीं भू मानस में ?
क्यों राष्ट्रों के बीच पड़े हैं लोह आवरण ?
कौन साधनों का प्रयोग कर रहे धराजन
नव भू स्वर्ग बसाएँगे क्या रक्त सने कर ?
क्यों भीषण उपकरण जुटे हैं विश्व ध्वंस के ?
सेनाएँ संगठित हो रहीं विकट, भयंकर
अस्त्र शस्त्र बन रहे विनाशक, वज्र निनादक ?
काल दंष्ट्र-से जो कराल, जिनके दशन में
महा नाश के निर्मम तत्व हुए हैं बंदी
शत प्रलयों का ध्वंस, कोटि कुलिशों का पावक
जिनमें पुंजीभूत विषाणु महामारी के ।।

[मृत्यु और विनाश सूचक [illegible] शान्ति समाज]

क्यों मानव मन का उत्पीड़न, जो श्रम शोषण
आज चल रहा छद्म बल से, निर्मम साहस से !
कहाँ गया रण धर्म, मानुषी मर्यादाएँ
विविध संधि विग्रह, समझौते भू भागों के —
नियम पत्र, प्रण, निर्बल राष्ट्रों का संरक्षण
औ' सर्वोपरि शांति घोषणाएँ देशों की ?
नारकीय कर्मों में रत क्यों उभय शिविर अब ?
मनुज हृदय क्या आज हो गया इतना निर्मम ?
इन्हीं साधनों से होगा क्या सृष्टि श्रेय का ?
आज साध्य औ' साधन में क्यों इतना अंतर ?
एकांगी शुभ स्वप्न रहा मानव समाज का,
भौतिक मद से, जीवन तृष्णा से प्रमत्त हो,
विचर गया जो अंध नाश में आत्म पराजित !!
युग आदर्श यथार्थ साथ चल सके न भू पर !

[शान्ति समाज [illegible] [illegible] और
विध्वंस समाज [illegible] तथा [illegible]]

ऐसा हाहाकार, तुमुल रणनाद हो रहा
शत शत रण कड़क उठते नभ को विदीर्ण कर
प्रलय काल सी काँप रही भू पर [illegible], यह
नरक द्वार खुल गया नाश का क्या जन भू पर !!

[[illegible] हाहाकार का [illegible] हो जाता है । [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] उभर [illegible] है । [illegible] शान्ति समाज उसका [illegible] आकर्षित करता है [illegible] उसका [illegible] मौन [illegible] में बैठ जाता है ।]

[मंच करुण शान्ति संगीत के साथ धरा चेतना का गीत]

अंधकार, घन अंधकार है,
अंधकार है!
रुद्ध मनुज के हृदय द्वार
घन अंधकार छाया अपार है,
अंधकार है
बाहर जीवन का संघर्षण
भीतर आदर्शों का गर्जन
भरा मौन प्राणों में क्रंदन
उर में दुःसह व्यथा भार है
बदल रहा जन भू का जीवन,
निखर तत्वों पर रहा विश्व मन,
घुमड़ रहा उन्मद अवचेतन
मनुज विनय बन रहा हार है!
युग परिवर्तन का दुर्वह क्षण
डाल अचेतन का अवगुंठन
आरोहण करता नव चेतन
प्रलय सृजन क्रम दुर्निवार है!

[शान्ति संगीत में भाव परिवर्तन]

हँसता नव जीवन अरुणोदय
तम प्रकाश में होता तन्मय,
सिन्धु क्षितिज पर दूर स्वप्न स्मित
उठता स्वर्णिम ज्योति ज्वार है!
यह स्वर्गिक भावों का शोणित
जीवन सागर लगता लोहित
सत्य भरा स्वप्नों का वाहित
भार मुक्त लग रहा पार है!

[आशा उल्लासप्रद शान्ति संगीत के साथ यवनिका पतन]



दिग्विजय

[जाप । सत्य की बहिरंतर विजय का काव्य रूपक]

मरुत

अप्सरा

खेचर

नील ध्वनि

दिशा स्वर

भू स्वर

[अन्तरिक्ष में अप्सराओं का गान]

गाओ, जय गाओ!
ईश्वर का प्रतिनिधि नर,—
दिग्विजयी मानव पर
नंदन वन के प्रसून
हँस हँस बरसाओ!

ओ विद्युत् बालाओ,
प्राणों की ज्वालाओ,
स्वर्ग मर्त्य मध्य स्वर्ण
सेतु नव बनाओ!

चन्द्रकला पंखों पर
अप्सरियों, उड़ निर्भर
दिग् युग का सुरधनु स्मित
केतन फहराओ!

पृथ्वी का पट भार,
उमड़ चैतन्य ज्वार
अयि अनंत यौवन मयि
नूपुर झनकाओ!

रजत-नाल शुभ्र व्योम
निकट शुभ भौम धाम
शोभा आनंद प्रीति
सार में जगाओ!

मादक नर-देह-गंध
दिशा हर्ष-मत्त अंध
मिल धरा-स्वर्ग, पुन
सज नव सताओ!

खुला योनि लोक द्वार
अंतरिक्ष आर पार
भू-सुत करते निहार,
भुवन नव रचाओ!

[संगीत ध्वनि धीरे धीरे अंतरिक्ष में लय हो जाती है। मरुत और अप्सरा का क्षितिज में वार्तालाप।]

मरुत

धन्य, शब्द-गति, ज्योति-वेग को भी अतिक्रम कर
किस प्रवेग में छूट, आ रहा कौन अस्त्र यह?
वायु बाण या अग्निबाण? या दिशा-यान यह?
या नूतन ग्रह उदित हुआ अब अंतरिक्ष में?
सौर चक्र की स्वर्णिम गतिलय में बँध कर जो
परिक्रमा करता पृथ्वी की—मुग्ध, चतुर्दिक्
विश्व नृत्य में मत्त—ज्योतिरिंगण सा चंचल!

[प्रक्षेपास्त्र के उड़ने की ध्वनि]

कौन मूढ़ खग, दुःसाहसी प्रमत्त मनुज या
ढीठ परस झुलसाने—गर्वित दृष्टि गँवाने
भंग कर रहा शुभ्र शांति निःसीम नील की—
जहाँ अमर भी श्रद्धानत, निःशब्द विचरते
अप्सरियाँ नूपुर उतार अभिसार स्थलों पर
आती जाती—संकेतों से मौन प्रकट कर!
नहीं जानता क्या वह, प्रहरी सूर्य दिशा का?

अप्सरा

अघटनीय यह—कोई अमित नील का नाप!
प्रथम बार धरती के गुरु-आकर्षण से उठ

चलता अलस अलघ्य शृंग पर ज्यों भूचर!
थाह सिन्धु की लेता हाय, नमक का पुतला!
कैसे ध्वनि सस्वर गूँज नीहार लोक की
तड़ित् तरंगों में कंपित करते!—सुनते हो?

[ध्वनिगर्जन स्पष्ट होता है]

एक स्वर

कौन हो तुम खेचर? मैं धरती का स्वर हूँ!

खेचर

जी, प्रसन्न हूँ,—गगनांग में!—बोल रहा हूँ—
ठीक कार्य कर रहे यान के यंत्र—यथाविधि—
अक्षत हूँ मैं!—दिशापाल अनुकूल जागते!—

एक स्वर

कैसा लगता वहाँ?

खेचर

न पूछो!—अद्भुत! अद्भुत!

एक स्वर

दिङ् मंडल के कुछ अनुभव बतला सकते हो?

खेचर

रक्त-नील प्रभ व्योम लोक में तिर रहा हूँ!
शुभ्र शांति के भार मौन निस्तल सागर में
डूब रही निःसीम चेतना—भारहीन हो!
उच्च वायुओं की पवित्रता में अवगाहित
मन तन्मय हो रहा—निखिल का महत् स्वप्न सा!
भार मुक्त तन तैर रहा आनंद राशि में!
शून्य शांत ज्योतिर्लोकों में कैसे सुन्दर

ताने स्वर्णप्रभ वितान गोलार्ध नील में।
हरित नील कदुक सा दीख रहा भूगोलक।
आ, अति रोमांचक, रहस्यमय, महा दिशा का
निस्सर नीलम मणि प्रसार यह! — यहाँ धरा के
लघु जीवन संघर्ष लीन हो आरोहों में
अर्थहीन से लगते घन नीरव अनंत में! —
यह अगाध, निस्तल, अकूल उदधि हो! धरती
मात्र बाह्य तल-तल जिसकी — अगम तरंगित!

एक स्वर

कैसा दीख रहा खगोल? नक्षत्र क्षितिज, भ?

खचर

बृहत खगोल? न पूछो, पुरुष पुरातन कोई
देख रहा अनिमेष अनिमेष, समाधि मग्न सा,—
रोम रोम में अपने शत ब्रह्मांड प्रवाहित,
ध्यानावस्थित सा, असंग निष्काम शांति में!
स्वर्ण हरित चेतना दिशा की सँजो हृदय में
प्रात मणि आभा सी लिपटी ज्यों अनंत में!

एक स्वर

आ, रोमांचक गाथा, निश्चय, अंतरिक्ष की!
शून्य निदाला मृत — आत्म साक्षात्कार-रत!

खचर

कृष्ण नील भरा पर स्मित स्वर्णारुण रेखा सा
खिला प्रकाश क्षितिज, भू की स्वर्णिम कांती सा,
प्रभा-वृत्त हो अगणित छायाओं से विरचित।
मुक्त प्रसार, — न किंचित् भी अवरोध सामने,
मात्र दृष्टि ही का सीमा — जा खो सा जाती!

नील आस्य पर महा हास्य भर उज्ज्वल तारे
जगमग करते दिव्य दीपों-से नभ करतल में!—
स्वर्गंकित आनन लिपटाए स्फीत देह पर
गरजती लपटी हो दिशा अनंत वक्ष में,—
आँधी, गाथाओं सी गत युगों की ज्वाला!
अनिर्वाण हो जिए शून्य या निज सत्ता में
दिशा यानि का उदर स्वप्न बन जाता है!

एक स्वर

लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाय न खेचर फिर प्रमत्त हो!

खेचर

मुक्त नहीं स्वर्गों का भय! — देख रहा धरती को
इन्द्रधनुष में लिपटी — मुग्ध अनंत यौवना
नाच रही जो मुक्त उर्वशी सी असीम में!
देख रहा अपलक ज्योति मय यौवन शोभा!
उड़ता गंध पवित्र दुकूल श्यामा पवन का—
शस्य हरित चोली वनानों के शिखरों पर—
झूम रही फेनामिल नदियाँ कल्हार सी—
लहराता लहंगा सागर का रत्न मणि जड़ा
धूप छाँह मय रश्मिरंजित रंगों से रंजित!
नाच रहा यह गिरि शृंगों के हाथ उठाए
नील सुति में! — दिव्य प्रकाश से मन रंजित!
देख रहा हूँ — भू पर बहु रंगों, रागों का,
प्यार भर रहा महाद्वीप के पत्थर मानव—
समता आ रही बहु जातियों, रंगों की
जो भू पर प्रतिभा भर सुन्दर जीवन का!
याद आ रहा युगों का सन्तों का प्रतिपल
स्मरण पर रहे होंगे वे भी विजय दम्भ!
साथ रहे होंगे तब अद्भुत साहस की
बातें — वे भी पहले विश्व मशाल कर में

लक्ष्य न जाऊँ—भटक न जाऊँ—लौट न पाऊँ!
चिंतित होंगे—महत् शून्य का मगारीपन
निगरा न जाए रहा अपना पाकर मुस्का —
मनुज जाति मे, गृह स्वदेश से जा अब निगहित!
हँसते होंगे शत्रु—सोम के पंख लगा कर
सूरज से मिलने के मेरे दुस्साहस पर —
कहते होंगे—हाय जला कर क्या जाना नर
पंख जद्र का लौटेगा अनल में धर कर
पर मैं मानव अंतर की आशाऽकांक्षा का
केवल प्रथम प्रतीक मात्र हूँ—जो अनादि से
शब्दहीन इस महानील के चिर रहस्य को
चीर ज्योति स्वर लिपि में अंकित गह्वोद्गारित
उसके राजाक्षर मसी को पढ़ने के हित
चिर आकुल था—उसके ज्योतिर्मय आँगन का
अभ्यागत बनने को उत्सुक!—जयी आज नर!
दिग दुंदुभि घोषित करती मानव की जय को
जब बज उठतीं तारों की रुपहली पायलें—
पुष्पहार ले स्वागत करता मुग्ध अप्सरा
रश्मि परन, शत सुरधनु छायाओं में लिपटा!
दिशा हस्तगत आज सहसा जग पथ के!
दूर हुईं दिग गत बाधाएँ विश्व प्रगति की
भू जीवन संयोजन की, मानव विकास की!

एक स्वर

धन्य जयी नर धन्य जयी जागरण भू जन का!

खेचर

लो मैं पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण कर रहा—
घूम समांतर क्षितिज वृत्त के दिशा यान में!
अब धरती पर उतर मातृ भू की पदरज को
चूम नमन कर अंतरिक्ष के रजत हप को

माँ के चरणों पर अर्पित कर, जन जन में मैं
स्वर्ग स्नान भर दूँगा, गायन अनुभव कह—
यह रहा उड़ा हुआ छत्र!—अनिर्वचनीय, आह,
निःशब्द नाद, निराकार नील, निःसीम नील!—

[हठात् निराकार निःसीम में गम्भीर गम्भीर ध्वनि उठती है।]

नीरव ध्वनि

ठहरो दिग्वर ठहरो,—भू की परिक्रमा कर
गोल नील को नापा, तुम गर्व स्फीत हो
लौट रहे अब दिग् विजयी बनकर धरती पर!
सुनो अन्तरिक्षय ले जाकर—मानवेन्द्र बन!
सुनो!—नील, निःशब्द नील—यों बोल रहा है,—
मैं ही गुण शब्द—मौन मुझमें तन्मय हो
रही गुञ्जर हो उठती रव नियम में स्पन्दन!—
क्या पार्थिव मनुज जाति स्व समर्पित जय में?—
माना, मंगल चन्द्र गुरु में धरा पुत्र ने
विजय वैजयंती फहरा दी—तो क्या
तोड़ सकेगा मानव अपनी लौह नियति को?—
पाप रहा जो उस घर निमग्न पापी में!
देह प्राण मन में वह घर दिग्यात्री था,
भेद बुद्धि में शोषण कर स्वपन्न यति का,
जग मृत्यु पर्वों ने निर्भर को देखा। कर—
स्वह धूलि में स्पर्श कर आकाश न छू सका!

[गम्भीर ध्वनि प्रभाव]

[illegible]

मैं, स्वय पराजित होने मानव के
हाथों से—मर ऊपर शिखर पर नव यह निर्भय
पाएगा अपनी सार्थकता,—शांति, शांति,
आनंद, प्रीति, सौंदर्य अनश्वर—अमृत-तत्त्व !
जा, ओ भूचर तू मेरा मधि निमत्रण ले जा—
मैं रण के हित भी उद्यत हू—मानव चुन ले !
म प्रसन्न हू तेरे निष्फल दु साहस से,
बुद्धि-कुशल सारव यत्न स !—अतरिक्ष के
भीतर अगणित अतरिक्ष हैं—आकाशों के
भीतर अमिताकाश सूक्ष्म अति गुह्य, अगोचर,—
महाकाल का गूढ निधान दिशा प्रांगण पर !
काल जयी बन !—आत्मजयी हो विश्वजयी भी !
विना मेरु पर चढ़, मात्र शाखा मृग सा तू
ग्रह से ग्रह पर कूद, क्षितिज से फाद क्षितिज पर
यत्न करेगा क्या? बाहर के जग में व्यापी
नक्षत्रों की चकाचौंध में—रिक्त परिधि ना !
तू ही सब का केन्द्र,—केन्द्र ब्रह्माड—विश्व का—
तेरे ही भीतर सूरज, शशि, ग्रह, उपग्रह सब !
आत्मवान्, तू धराधाम को बदल स्वर्ग में !
बाध विविध भू दर्शों को नव मानवता म—
आज विरोधी शिविरों म जो बँटे हुए है !
भू मन का तम मत ले जा तू अन्य ग्रहों म—
राग द्वेष, कटु घृणा कलह, निंदा प्रतिस्पर्धा !
नक्षत्रों की शुभ्र शांति को युद्ध क्षेत्र के
नारकीय कालाहल में मत बदल व्यथ हो !

सचर

[ससभ्रम]

गुह्य, पुरातन तम स्वर फिर स सुन पड़ता है !

अविनाशी हूँ मैं!—फिर तुझको जगत चक्र में
पीसूँगा,—नव सृष्टि खींचा कर!—विश्व ध्वंस कर
लाख प्रलय तू भले बुला ले,—तुझको फिर से
काल शिखर जय करना होगा—आत्म उन्नयन कर,
जन-भू पर मनुज हृदय का स्वर्ग रचा कर!
दिक् प्रमत्त, विज्ञान शक्ति से बहिर्जगत की
रचना कर तू, आत्म ज्ञान से अंतर्जग का—
प्रेम-स्वर्ग रच मनुज हृदय में!—देह प्राण मन
हों कृतार्थ आनंद स्रोत में अवगाहन कर!
इंद्रिय जीवन कुसुमित हो भू की शोभा में,—
अंत रस अभिषिक्त, बाह्य बंधन से विरहित!
एकांगी भौतिक विकास से उन्मद भू-जन
मन्यु रुद्र का सहें!—सत्य का मुख पहचानें!
पथरा गयी विविध स्वार्थों में मनुज चेतना
गत मूल्यों, धर्मों, संस्कृतियों में शत खंडित,
जाति पाँति, वर्णों वर्गों में वर्ग-विभाजित!
महत् खंड जब तक जन मन का प्रकृति दमन से
नष्ट न होगा—जन्म न ले पाएगा नूतन—
हृदय-स्वर्ग रचना संभव होगी न सत्य हित!
हुं—हुंकार रहा निश्चेतन प्रकृति गर्भ में—
गरज उठा, लो, अंबर—टूट रहा शत विद्युत!

[मेघ गर्जन तथा वज्र निपात का घोर रव]

मधुकर

गूढ़, पुरातन, रहस्यमय अंतर ध्वनि उठती!
झंकृत होता, दिक् मादक होता यह!—मुझको हूँ
जिज्ञासी सा, अहं, उड़ रहा मन आत्म पराजित!
मात्र यथावत् काय कर रह मन, तन, स्वपर!
लगता है लहरें हो उमँग पर भू की हूँ!

मैं, स्वयं पराजित होने मानव के
हाथों से—मर ऊर्ध्व शिखर पर चढ़ वह निर्भय
पायगा अपनी सार्थकता,—शांति, ज्योति,
आनंद, प्रीति, सौंदर्य अनश्वर—अमृत-तत्त्व !
जा, ओ भूचर तू मेरा सधि निमंत्रण ले जा—
मैं रण के हित भी उद्यत हूँ—मानव चुन ले !
मैं प्रसन्न हूँ तेरे निष्फल दुःसाहस से,
बुद्धि कुशल सागल यत्न से !—अंतरिक्ष के
भीतर अगणित अंतरिक्ष हैं—आकाशों के
भीतर अमिताकाश सूक्ष्म अति गुह्य, अगोचर,—
महाकाल का गूढ़ विधान दिशा प्रांगण पर !
काल जयी बन !—आत्मजयी हो विश्वजयी भी !
विना मेरु पर चढ़े मात्र शाखामृग सा तू
ग्रह से ग्रह पर कूद, क्षितिज से फांद क्षितिज पर
व्यर्थ करेगा क्या ? बाहर के जग में खोया,
नक्षत्रों की चकाचौंध में—रिक्त परिधि जो !
तू ही सब का केंद्र,—केंद्र ब्रह्मांड—विश्व का—
तेरे ही भीतर सूरज, शशि ग्रह उपग्रह सब !
आत्मवान्, तू धराधाम को बदल स्वर्ग में !
नाथ विविध भू-देशों को नव मानवता में—
आज विरोधी शिविरों में जो बँटे हुए हैं !
भू मन का तम मत ले जा तू अन्य ग्रहों में—
राग द्वेष, कटु घृणा कलह, निंदा, प्रतिस्पर्धा !
नक्षत्रों की शुभ्र शांति का युद्ध क्षेत्र के
नारकीय हालाहल में मत बदल व्यथ हो !

खेचर

[ससंभ्रम]

गुह्य, रहस्य तम स्वर फिर से सुन पड़ता है !

नील'ध्वनि

अविनाशी हू मैं !—फिर तुझको जगत् चक्र में
पीसूँगा,—नर सृष्टि सँजो कर !—विश्व ध्वस कर
घोर प्रलय तू भले बुला ले,—तुझको फिर से
काल शिखर जय करना होगा—आत्म उन्नयन कर,
जन-भू पर मनुज हृदय का स्वग बसा कर !
दिक् प्रमत्त, विज्ञान शक्ति से बहिर्जगत की
रचना कर तू, आत्म ज्ञान से अतजग का—
प्रेम-स्वर्ग रच मनुज हृदय में !—देह प्राण मन
हो कृतार्थ आनद स्रात में अवगाहन कर !
इद्रिय जीवन कुसुमित हो भू की शोभा म,—
अत रस अभिषिक्त, बाह्य बधन से विरहित !
एकागी भौतिक विकास से उन्मद भू जन
मन्यु रुद्र का सह !—सत्य का मुख पहचानें !
पथरा गयी विविध स्वार्थों म मनुज चतना
गत मूल्यों, धर्मों, संस्कृतियो म शत खडित,
जाति पाति, वर्णों दर्गों म वग विभाजित !
महत् खंड जब तक जन मन का प्रकृति धर्म से
नष्ट न होगा—जन्म न ले पाएगा नूतन—
हृदय-स्वग रचना सभव होगी न मनुज हित !
हु—हुकार रहा गिरता प्रकृति नभ में—
गरज उठा, लो, अबर—टूट रहा शत विद्युत् !

[मेघ गजन तथा वज्र निपात का पार रव]

गेरव

गूढ, पुरातन, गभहार मतर ध्वनि उठती !
गशब्द क्षण, फिर् गंभीर हाल यह !—घुमड रू
चिनगारी सा, आह उठ रहा मन जगत प्रगति !
मात्र यत्नरत् पार कर गए मा ता, कादर !
लगता हैं लडखडा उठेगा पग भू का ! !

दिशा स्वर

मा भै, मा भै! मैं हूँ माता दिशा काल की
अपने तन्मय उर में धारण करता हूँ मैं
मूर्तिमती प्रतिछाया उभरी!—उतरो खेचर,
उतरो, मेरी बाँह पकड़ कर, उतरो भू पर!
नयी दिशा दूँगी मैं मानव मन, भू-जन को!
दिगभियान हो सफल तुम्हारा, तुम मानव को
महाकाल का नीलकंठ संदेश दे सको!
रुद्र और शिव एक साथ जो कारण के कारण,
निश्चेतन अतिचेतन के स्वामी, केवल!

खेचर

मात्र प्रकृति का आश्वासन यह!—निर्भय हूँ मैं,
तुम्हें समर्पित कर माँ, अपना तन मन जीवन!

[मा ग्राम]

दिखलाई पड़ता स्वदेश तट,—सद्य जोते
खेतों के रज की सौरभ यह!—उतर गया, लो,
मखमल सी दबती पैरों के नीचे मिट्टी—
स्नेह स्निग्ध सोंधी सुगंध नासापुट में भर
पुलकित करती तन—अंबर की घन नीरवता
चर्चित है इस इंद्रिय दीपन मादक सुख से!
क्षितिज वृत्त अब सीमित होकर नव वसंत के
स्मित पल्लव अधरों से मर्मर स्वागत करता—
नील मौन की चेतावनी नहीं भूला मन!
लगता जड़ में भी पा सकता मन चेतन को,
यदि चेतन ही जड़ है तो जड़ भी चेतन है
सत्य वही है—दृष्टि मात्र बदली है केवल
ज्ञान और विज्ञान एक हो तत्व सिखाते!—
कुहरा सा हट गया भेद खुल गया वस्तु का!
ज्ञान दीप्त विज्ञान पंथ ही नया पंथ है!

अन्य नहीं पथ, अन्य नहीं पथ, अन्य नहीं पथ,
खुला सर्व हित मात्र यही सामूहिक पथ है!—
देख रहा मैं मनोनयन से दिव्य मानव को,
खड़ा हो वह महा दिशा में अधोस्थित तन
अतल सिन्धु में चरण, जघन कटि उदर धरा पर,
हृदय स्वर्ग में, मस्तक त्रिदिव क्षितिज के ऊपर!
जाग रहा वह ध्यान लीन भी, ध्यान हीन भी
जय नव मानव की, जय नव विज्ञान ज्ञान की,
भौतिक पथ से बढ़ साथ सामाजिक मानव
आध्यात्मिक, सांस्कृतिक लक्ष्य को—यही साध्य है,
यही सुलभ साधन!—पथ स्पष्ट उभय ओर हैं!

[जन कोलाहल का प्रभाव]

एक स्वर

देखो, देखो, गगन रथ वह, उतर रहा है!
अंतरिक्ष का दूत,—उड़न छतरी गोल वह
धरती धरती पर पग!

कई स्वर

स्वागत, स्वागत खेचर!

एक स्वर

बिना खड़खड़ाए ही, लो, वह चला आ रहा!
खोल दिया मुख का अवगुंठन, दृग क्षितिज के
अरुण-रंग अमृताधर, मद रहस्य नील के!

कई स्वर

स्वागत हे स्वागत चिर मानव, व्योम जयी नर!
खुले द्वार युग नव धरा हित आज स्वर्ग के!

दिशा स्वर

मा भै, मा भ ! मैं ह माता दिशा, काल का
अपने त मय उर म धारण करता ह मैं
मूर्तिमती प्रतिच्छाया उभरी !—उतरा सागर,
उतरा मेरी बाह पकड़ कर, उतरा भू पर !
नयी दिशा दूँगा मैं मानव मन भू-जन को !
दिगभियान हो सफल तुम्हारा, तुम मानव का
महाकाल का नीलकंठ सदेश द मका !
रुद्र और शिव एक साथ ना कारण क कारण,
निश्चतन अतिचतन क स्वामी, करल !

खचर

मात प्रकृति का आश्वासन यह !—निभय हूँ मैं,
तुम्हें समर्पित कर मा, अपना तन मन जीवन !

[मालगाम]

दिखलाई पडता स्वदेश तट,—सद्य जाने
रोता क रन का सारभ यह !—उतर गया ला
मखमल सी दबती परो के नाच मिट्टी—
स्नेह स्निग्ध साधी सुगध नासापुट म भर
पुलकित करती तन —अबर की घन नीरवता
रचित है इस इद्रिय दीपन मादन सुख से !
क्षितिज वृत्त अब सीमित होकर नव वसत क
स्मित पल्लव अधरा से मर्मर स्वागत करता—
नील मौन की चेतावनी नहा भूला मन !
लगता जड म भी पा सकता मन चेतन को,
यदि चतन ही जड है ता जड़ भी चतन है
सत्य यही है —दृष्टि मात्र बदली है केवल
ज्ञान और विज्ञान एक हो तत्त्व सिखाते !—
कुहरा सा हट गया भद खुल गया वस्तु का !
ज्ञान दीप्त विज्ञान पथ ही नया पथ है !

अन्य नहीं पथ, अन्य नहीं पथ, अन्य नहीं पथ,
खुला सर्व हित मात्र यही सामूहिक पथ है !—
देख रहा मैं मनोनयन से दिव्य मानव को,
लेटा हो वह महा दिशा में अर्धोंकित तन
अतल सिन्धु में चरण, जघन कटि उदर धरा पर,
हृत्य स्वर्ग में, मस्तक त्रिदिव क्षितिज से ऊपर !
जाग रहा वह ध्यान लीन भी, ध्यान हीन भी
जय नव मानव की, जय नव विज्ञान ज्ञान की,
भौतिक पथ से चले साथ सामाजिक मानव
आध्यात्मिक, सांस्कृतिक लक्ष्य को—यही साध्य है,
यही सुलभ साधन !—पथ सकल उभय ओर हैं !

[जन कोलाहल का प्रभाव]

एक स्वर

देखो, देखो, गगन रंग वह, उतर रहा है !
अंतरिक्ष का दूत,—उड़न छतरी खोल वह,
धरती धरता पर पग !

कई स्वर

स्वागत, स्वागत खेचर !

एक स्वर

बिना लड़खड़ाए ही, लो, वह चला आ रहा !
खोल दिशा मुख का अवगुंठन, चूम क्षितिज के
अरुण-स्वर्ण अमृताधर, भेद रहस्य नील का !

कई स्वर

स्वागत हे स्वागत दिव्य मानव, व्योम चर्या नर !
रुद्ध द्वार खुल गए धरा हित आज स्वर्ग के !

अभिनंदन, वंदन हे!
पृथ्वी के हित खुला स्वर्ग का
स्वर्ण क्षितिज तोरण हे!

छाया पथ पर चल मानव रथ
देख रहा भमा रा रति अथ,
धरती के पुत्रों से शोभित
ग्रह ग्रह का आँगन हे!

खुले रुद्ध भवानन बंधन
जड की सीमा हुई समापन—
लगता शून्य अनंत, सूर्य से
दीप्त, आत्म चेतन हे!

विश्व मुक्ति ही व्यक्ति मुक्ति पथ,
मानवता की तुम्हें है शपथ,
दिव्य युग रचना करो, एक हो
विश्व, एक भव जन हे!

हो भौतिक सोपान स्वर्ग तक,
आत्म दीप्त अंतर दृग अपलक,
भावों की शोभा में मुकुलित
हो इंद्रिय जीवन हे!

प्राणों की चिर चंचल परियाँ
शुभ्र चेतना की अप्सरियाँ,
धरा-स्वर्ग रचना मंगल में
भरता आलिंगन हे!
वंदन अभिनंदन हे!

